नॉस्डॉक अनुसंधान सूचना श्रृंखला: 1

नवागत पुस्तकें

: सारांश के साथ नई प्रविष्टियों की सूची

सितम्बर (हिंदी विशेष), 2024

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद
राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान प्रलेखन केंद्र
35, फिरोजशाह रोड,
नई दिल्ली – 110001

© नॉस्डॉक-आईसीएसएसआर
****
नवागत पुस्तकें: सारांश के साथ नई प्रविष्टियों की सूची
नॉस्डॉक समूह द्वारा संकलित और संपादित,
(नॉस्डॉक अनुसंधान सूचना श्रृंखला: 1)
सितम्बर (हिंदी विशेष), 2024, 43पृष्ठ.
****

प्राक्कथन

नवागत पुस्तकें: सारांश के साथ नए परिवर्धन की सूची" के वर्तमान अंक (हिंदी विशेष) में सितंबर 2024 के महीने में प्राप्त की गई नई पुस्तकों की सूची है और ये आईसीएसएसआर के राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान प्रलेखन केंद्र में उपयोग के लिए उपलब्ध हैं। मुख्य पाठ में, प्रविष्टियों को परिग्रहण संख्या के अनुसार व्यवस्थित किया गया है, उसके बाद ग्रंथसूची विवरण और दस्तावेज़ का सारांश दिया गया है। आसान पुनर्प्राप्ति के लिए, लेखक और अनुक्रमणिका सूची भी अंत में दिए गए हैं जहाँ लेखक या अनुक्रमणिका के सामने की क्रम संख्या नए आगमन की मुख्य सूची में प्रविष्टि की क्रम संख्या को दर्शाती है। इच्छुक पाठक पुस्तकालय में जाकर सूचीबद्ध शीर्षकों को पढ़ सकते हैं।

सुझावों का हमेशा स्वागत है।

डॉ. एस.एन.चारी
उप निदेशक
नॉस्डॉक

क्रम संख्या	शीर्षक एवं अन्य विवरण	परिग्रहण सं.

1 भारत के संकटग्रस्त वन्य प्राणी/ मुले, गुणाकर - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2014; 247p.

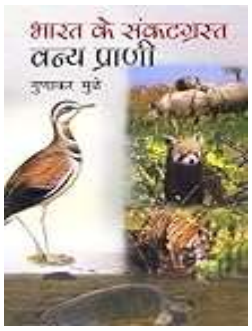

53397

हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि किसी दिन इस धरती पर केवल मानव जाति का अस्तित्व होगा। पशु-पक्षियों व अन्य जीवधारियों की असंख्य प्रजातियों और वनस्पतियों की अगणित किस्मों के अभाव में क्या इस सृष्टि में जीवन को बचाए रखना संभव होगा। सच्चाई तो यह है कि सृष्टि एक अखंड इकाई है। चराचर की पारस्परिक निर्भरता ही जीवन का मूल मंत्र है। यदि किसी कारण से जीवन-चक्र खंडित होता है तो इसके भीषण परिणाम हो सकते हैं। 'भारत के संकटग्रस्त वन्य प्राणी' में प्रसिद्ध लेखक गुणाकर मुळे ने ऐसे प्राणियों की चर्चा की है जो विलुप्त होने की कगार पर हैं। उन्होंने अनेक ऐसे प्राणियों का जिक्र किया है जिन्हें अब इस धरती पर कभी नहीं देखा जा सकता। विगत दशकों में 36 प्रजातियों के स्तनपायी प्राणी और 94 नस्लों के पक्षी प्रकृति के अंधाधुंध शोषण के कारण नष्ट हो चुके हैं। लेखक की चिंता यह है कि यदि इसी प्रकार हिंसा, लालच और अतिक्रमण का दौर चलता रहा तो इस खूबसूरत दुनिया का क्या होगा! यह असंतुलन विनाशकारी होगा। लेखक के अनुसार, 'हमारे देश में प्राचीन काल से वन्य प्राणियों के संरक्षण की भावना रही है। हमारी सभ्यता और संस्कृति में वन्य प्राणियों के प्रति प्रेम भाव रहा है। इसलिए हमारे समाज में वन्य जीवों को पूज्य माना जाता है। वन्य जीवों तथा पक्षियों को मुद्राओं और भवनों पर भी चित्रित किया जाता रहा है।' हमें आज इस भाव को नए संदर्भों में विकसित करना होगा। वन्य प्राणी संरक्षण के लिए बनाए गए अधिनियमों से अधिक आवश्यकता व्यापक नागरिक चेतना की है गुणाकर मुळे सहज सरल भाषा में इस आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। अनेक चित्रों से सुसज्जित यह पुस्तक पर्यावरण के प्रति जागरूकता निर्माण में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

2 ग्रामीण पर्यावरण/ देवपुरा, प्रतापमल - प्रगति साहित्य सदन, दिल्ली, 2023; 64p.

53998

ग्रामीण पर्यावरण पर्यावरणीय पहलुओं और ग्रामीण क्षेत्रों के सामने आने वाली चुनौतियों पर केंद्रित है। यह संक्षिप्त सारांश ग्रामीण परिवेश की अनूठी विशेषताओं की पड़ताल करता है, जिसमें उनकी पारिस्थितिक गतिशीलता, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और कृषि प्रथाओं के साथ बातचीत शामिल है। यह ग्रामीण समुदायों में सतत विकास के महत्व पर प्रकाश डालता है, ग्रामीण आधारभूत संरचना, आजीविका, स्वास्थ्य, स्वच्छता और ऊर्जा प्रबंधन जैसे मुद्दों को संबोधित करता है। ग्रामीण पर्यावरण की विशिष्ट विशेषताओं और पर्यावरण संबंधी चिंताओं की जांच करके, यह सारांश ग्रामीण पारिस्थितिक तंत्रों और उन पर निर्भर लोगों की भलाई सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी नीतियों और संरक्षण प्रयासों की आवश्यकता में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

3 नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक/ द्विवेदी, हजारीप्रसाद - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 365 p.

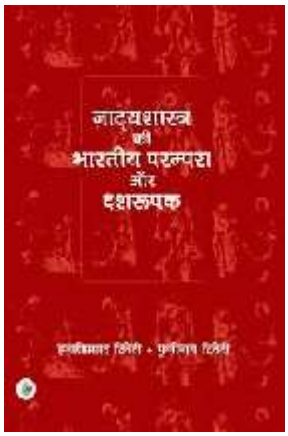

53399

दशरूपक' के लेखक विष्णु-पुत्र धनंजय हैं जो मुंजराज (974-995 ई.) के सभासद थे। भरत के नाट्य शास्त्र को अति विस्तीर्ण समझकर उन्होंने इस ग्रन्थ में नाट्यशास्त्रीय उपयोगी बातों को संक्षिप्त करके कारिकाओं में यह ग्रन्थ लिखा। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो अधिकांश कारिकाएँ अनुष्टुप् छन्दों में लिखी गई हैं। संक्षेप में लिखने के कारण ये कारिकाएँ दुरूह भी हो गई थीं। इसीलिए उनके भाई धनिक ने कारिकाओं का अर्थ स्पष्ट करने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ पर ' अवलोक' नामक वृत्ति लिखी। यह वृत्ति न होती तो धनंजय की कारिकाओं को समझना कठिन होता। इसलिए पूरा ग्रन्थ वृत्ति सहित कारिकाओं को ही समझना चाहिए। धनंजय और धनिक दोनों का ही महत्त्व है। भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र के बीसवें अध्याय को 'दशरूप-विकल्पन' (201) या 'दशरूप- विधान' कहा गया है। इसी आधार पर धनंजय ने अपने ग्रन्थ का नाम 'दशरूपक' दिया है। नाट्य-शास्त्र में जिन दस रूपकों का विधान है, उनमें हैं-नाटक, प्रकरण, अंक (उत्सृष्टिकांक), व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईशामृग । एक ग्यारहवें रूपक 'नाटिका' की चर्चा भी भरत के नाट्य-शास्त्र और दशरूपक में आई है। परन्तु उसे स्वतंत्र रूपक नहीं माना गया है। धनंजय ने भरत का अनुसरण करते हुए नाटिका का उल्लेख तो कर दिया है पर उसे स्वतंत्र रूपक नहीं माना। इस पुस्तक में धनंजय कृत कारिकाओं के अलावा धनिक की वृत्ति तथा नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा का परिचय देने के लिए आचार्य द्विवेदी ने अपना एक निबन्ध भी जोड़ा है।

4 किन्नर: अबूझ रहस्यमय जीवन/ द्विवेदी, शरद - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2022; 207p.

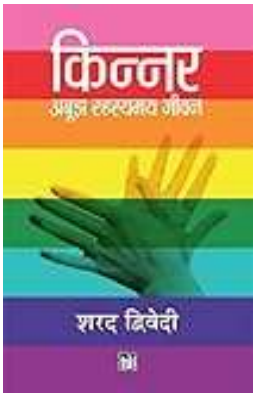

53400

किन्नर अबूझ रहस्यमय जीवन' में किन्नरों के दर्द, उनकी खूबी, उनके संस्कार, संस्कृति व परम्पराओं को समाहित किया गया है। थर्ड जेंडर अर्थात किन्नर कानूनी दायरे में नहीं आते। इनसान होने के बावजूद किन्नर उपेक्षित हैं। इनके हित में कानून तो बने लेकिन उसका जमीनी स्तर पर पालन नहीं हो रहा है। इसके पीछे तर्क दिया जाता है कि किन्नर न स्त्री हैं और न ही पुरुष । फिर उन्हें कोई आरक्षण अथवा कानून का लाभ कैसे दिया जाए? यह स्थिति भारत सहित विश्व के लगभग सभी देशों में है। आखिर यह बड़ी विडम्बना है ना! यहाँ व्यक्ति को बिना किसी गलती की सजा दी जा रही है। उन्हें धार्मिक, सांस्कृतिक पहचान दिलाने की कागजी कार्रवाई शुरू हुई। लेकिन अभी बहुत कुछ करना बाकी है। यह पुस्तक किन्नरों से आत्मीय जुड़ाव कराती है। साथ ही किन्नरों के अधिकार व सम्मान के लिए पुरजोर आवाज उठाने को प्रेरित भी करती है।

5 वैदिक संस्कृति/ पाण्डे, गोविन्द चन्द्र - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2019; 651p.

53401

भारतीय परम्परा में वेद को अनादि अथवा ईश्वरीय माना गया है। इतिहास और संस्कृति के विद्यार्थी के लिए इनमें भारतीय एवं आद्यमानव परम्परा की निधि है। महर्षि यास्क से लेकर सायण तक वेद के पण्डितों ने इनके अनेक अर्थ निकाले हैं, जिसके कारण वेदों की सही व्याख्या कठिन है। आधुनिक युग में वेदों पर जो भी प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे गये हैं उनमें इतिहास की दृष्टि से व्याख्या भले ही की गयी हो लेकिन आध्यात्मिक और सनातन अर्थ उपेक्षित हैं। पुराने भाषाशास्त्रीय व्याख्या के स्थान पर नयी पुरातात्त्विक खोज के द्वारा वेदों का जो इतिहास पक्ष बदला है उसका मूल्यांकन भी यहाँ किया गया है। इस अन्य में न केवल मैक्समूलर आदि को नयी व्याख्याएँ एवं सायण आदि की यज्ञपरक व्याख्या पर, बल्कि दयानन्द श्रीअरविन्द, मधुसूदन ओझा आदि की संकेतपरक व्याख्या पर भी विचार किया गया है। वैदिक संस्कृति की परिभाषा करनेवाले ऋत-सत्यात्मक सूत्रों की विवेचना एवं किस प्रकार वे भारतीय सभ्यता के इतिहास में प्रकट हुए हैं इस पर भी चिन्तन किया गया है। वैदिक संस्कृति, धर्म, दर्शन और विज्ञान की अधुनातन सामग्री के विश्लेषण में आधुनिक पाश्चात्य एवं पारम्परिक दोनों प्रकार की व्याख्याओं की समन्वित समीक्षा इस पुस्तक में की गयी है। इस प्रकार तत्त्व जिज्ञासा और ऐतिहासिकता के समन्वयन के द्वारा सर्वाङ्गीणता की उपलब्धि का प्रयास इस ग्रन्थ की विचार शैली का मूलमन्त्र और प्रणयन का उद्देश्य है।

6 भारतीय धर्म और संस्कृति/ उपाध्याय, रामजी - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2014; 160p.

53402

भारतीय संस्कृति संसार की अन्य संस्कृतियों से अनेक बातों में उत्कृष्ट है। वैदिक काल से आज तक नित्य विकास करती हुई यह संस्कृति नानाविध काव्य, शिल्प कला और सामाजिक उपलब्धियाँ की जन्मदात्री हैं। आज भी उसमें वह शक्ति है कि भारत को विश्व राष्ट्रमण्डल में अपनी सर्वोत्तम प्रतिभा से नेतृत्व करने की योग्यता प्रदान करें। हमें अपनी संस्कृति को जानना चाहिए और उसके अनुसार आचरण करना चाहिए इस उद्देश्य से इस पुस्तक का प्रणयन किया गया है।

7 लोक संस्कृति की रूपरेखा/ उपाध्याय, कृष्णदेव - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2019; 324p.

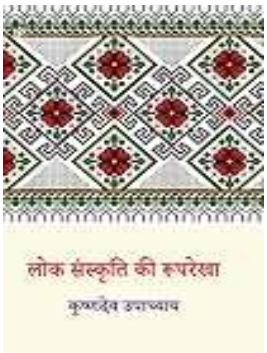

53403

प्रस्तुत ग्रन्थ को छः खण्डों तथा 18 अध्यायों मे विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में लोक संस्कृति शब्द के जन्म की कथा, इसका अर्थ, इसकी परिभाषा, सभ्यता और संस्कृति में अन्तर, लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति में अन्तर हिन्दी में फोक लोर का समानर्थक शब्द लोक संस्कृति तथा लोक संस्कृति के विराद स्वरूप की मीमांसा की गयी है। द्वितीय अध्याय में लोक संस्कृति के अध्ययन का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। यूरोप के विभिन्न देशों जैसे जर्मनी, फ्रान्स, इंग्लैण्ड, स्वीडेन तथा फिनलैण्ड आदि में लोक साहित्य का अध्ययन किन विद्वानों के द्वारा किया गया, इसकी संक्षिप्त चर्चा की गयी है। द्वितीय खण्ड पूर्णतया लोक विश्वासों से सम्बन्धित है। अतः आकाश-लोक और भू- लोक में जितनी भी वस्तुयें उपलब्ध हैं और उनके सम्बन्ध में जो भी लोक विश्वास समाज में प्रचलित हैं उनका साङ्गोपाङ्ग विवेचन इस खण्ड में

प्रस्तुत किया गया है। तीसरे खण्ड में सामाजिक संस्थाओं का वर्णन किया है जिसमें दो अध्याय हैं - (1) वर्ण और आश्रम (2) संस्कार। वर्ण के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के कर्त्तव्य, अधिकार तथा समाज में इनके स्थान का प्रतिपादन किया गया है। आश्रम वाले प्रकरण में चारों आश्रमों की चर्चा की गयी है। जातिप्रथा से होने वाले लाभ तथा हानियों की चर्चा के पश्चात् संयुक्त परिवार के सदस्यों के कत्तव्यों का परिचय दिया गया है। पंचम खण्ड में ललित कलाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन कलाओं के अन्तगर्त संगीतकला, नृत्यकला, नाट्यकला, वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला आती है। संगीत लोक गीतों का प्राण है। इसके बिना लोक गीत निष्प्राण, निर्जीव तथा नीरस है। पष्ट तथा अन्तिम खण्ड में लोक साहित्य का समास रूप में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लोक साहित्य का पाँच श्रेणियों में विभाजन करके, प्रत्येक वर्ग की विशिष्टता दिखलायी गयी है। षष्ट तथा अन्तिम खण्ड में लोक साहित्य का समास रूप में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लोक साहित्य का पाँच श्रेणियों में विभाजन करके, प्रत्येक वर्ग की विशिष्टता दिखलायी गयी है।

8 लोक संस्कृति और इतिहास/ नारायण, बद्री - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2022; 126p.

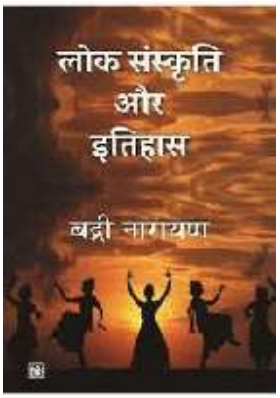

53404

प्रस्तुत पुस्तक 'लोक-संस्कृति और इतिहास' के प्रथम लेख में इतिहासकारों का लोक-संस्कृति से कटाव, बौद्धिक ज्ञान और जन- ज्ञान के बीच निरन्तर चौड़ी और गहरी होती खाई की समस्या पर विचार व्यक्त किए गए हैं। दूसरे लेख में पूर्वी लोक- चेतना में राष्ट्रवाद के प्रतिदर्श का अध्ययन और अखिल भारतीय राष्ट्रवाद से इसके सम्बन्धों के स्वरूप एवं द्वन्द्व को भी समझने का प्रयास किया गया है। तीसरे लेख में दन्तकथाओं को इतिहास की संघटनाओं से जोड़कर देखने का प्रयत्न किया गया है। बाद के अन्य लेख लोक- कवित्तों, मुहावरों, गीतों, लोकायनों तथा लोक-संस्कृति के विविध रूपों के माध्यम से लोक-चेतना में प्रवेश करने का प्रयास हैं। यह पुस्तक इतिहास, सामाजिक विज्ञान, लोक- संस्कृति के अध्येताओं के छात्रों के लिए उपयोगी तो है ही, साथ ही साथ आम पाठकों के लिए भी बेहद महत्त्वपूर्ण है

9 लोकसंस्कृति में राष्ट्रवाद/ नारायण, बद्री - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2014; 108p.

53405

प्रस्तुत पुस्तक 'लोकसंस्कृति में राष्ट्रवाद' में शोध को एक ढांचा प्रदान करने के लिये तीन लोक कवियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है जो लोक चेतना के तीन काल खण्डों में प्रतिनिधि हैं। लोकसंस्कृति के कुछ अन्य रूपों का उपयोग इतिहास लेखन और लोकसंस्कृति में किया है। इसमें सन् 57 के गदर की झलक भी शामिल है। लोकसंस्कृति को समय में बाँधने के कारण इस अध्ययन की कई सीमाएँ बन गयी हैं। पुस्तक में अन्तः अनुशासनिक तकनीकों एवं प्रविधियों का उपयोग किया गया है। इसमें मौखिक इतिहास की उपलब्ध प्रविधि को विकसित करने का प्रयास है। पुस्तक छह खण्डों में विभाजित है- राष्ट्रवाद का प्रमेय, इतिहास लेखन और लोकसंस्कृति, रचना का काल (1857 से 1900 ई.) / लोक सजगता एवं शुकदेव भगत की संघटना का वृत्तान्त, विरचना का काल (1900-1920 ई.) लोक संस्कृति में स्वीकार और बहिष्कार पुनर्रचना का काल (1920-1947 ई.)

लोक चेतना की क्रियात्मक क्षमता का पुनर्निर्माण और कवि कैलाश का संदर्भ तथा निष्कर्ष आदि विषयों का समावेश किया गया है।

10 भारतीय इस्लामी संस्कृति/ रज़ा, जाफ़र - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2013; 392p

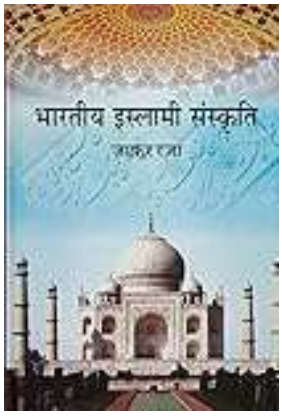

53406

प्रस्तुत पुस्तक में इस्लामी संस्कृति को मूलरूप में मुस्लिम समाज में इस्लामी प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में समझने की चेष्टा की गयी है। यहाँ इस तथ्य को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मुसलमानों के लिए इस्लाम मात्र ईश वन्दना का माध्यम ही नहीं है, वरन् मुसलमानों का अक़ीदा और ईमान होने के साथ-ही-साथ एक विशेष जीवन-पद्धति का नाम है। वे कुअन को आसमानी ग्रन्थ मानते हैं, जो इस्लामी पैग़म्बर पर श्रुतिप्रकाश के रूप में उत्प्रेरित हुआ। दूसरा आधार इस्लामी पैग़म्बर का जीवन एवं कृतित्व है। इन्हीं के आधार पर समस्त धार्मिक समाधान प्राप्त होते हैं। कुत्सित एवं अधिमान्य तथा अनुज्ञेय एवं वर्जित विषयों का निर्धारण होता है। यही मानक इस्लामी संस्कृति हेतु भी है। इस्लामी संस्कृति में कुअन तथा इस्लामी पैग़म्बर के जीवन एवं कृतित्व को मानक माना गया है। पाश्चात्य में इस्लाम तथा मुसलमानों के विषय में अध्ययन करते समय उपर्युक्त तथ्य को अधिकांश ध्यान में नहीं रखा गया है, बल्कि संस्कृति के व्यावहारिक पक्ष को क़ुर्बान तथा पैग़म्बर के द्वारा स्थापित मानक पर न रखते हुए मुसलमानों के कार्यकलाप के आधार पर देखते हैं। अतः सही निष्कर्ष पाने में असमर्थ हो जाते हैं। धर्म-विश्वासों का अन्तर खाईं बनकर बीच में आ जाता है। उदाहरणार्थ, कुअन के विषय में प्रत्येक मुसलमान का मत है कि इसका प्रत्येक शब्द ईश्वर की ओर से उत्प्रेरित किया गया है। इस्लामी पैग़म्बर का मन्तव्य उनकी हदीसों के रूप में वर्तमान है। यद्यपि उनका मन्तव्य भगवदिच्छा के आधार पर ही है, परन्तु वे ईश्वर की वाणी के रूप में नहीं हैं। कुअन का सम्पादन इस्लामी पैग़म्बर के जीवनकाल में ही हो गया था। उसमें कोई शब्द घटाया बढ़ाया नहीं गया है, जिस प्रकार अपने मूलरूप में श्रुतिप्रकाश हुआ था, अक्षरशः पुस्तक रूप में मुद्रित होने के अतिरिक्त विश्व भर में सहस्रों लोगों को कण्ठस्थ है। हदीसें बाद में एकत्र की गयीं। पाश्चात्य विद्वानों का मत भिन्न है, वे कुअन को श्रुतिप्रकाश के रूप में स्वीकार नहीं करते। अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् कुअन तथा हदीस के बीच अन्तर भी नहीं कर पाते और दोनों को इस्लामी पैग़म्बर से सम्बद्ध करने की भयावह भूल कर बैठते हैं, जिससे इस्लामी संस्कृति के विषय में उनका संज्ञान एवं निष्कर्ष असत्य पर आधारित हो जाता है।

11 वैज्ञानिक भौतिकवाद/ सांकृत्यायन, राहुल-लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज,2014; 168p

53407

वैज्ञानिक भौतिकवाद' आज के वैज्ञानिक युग के उस चरण की व्याख्या है जिसमें साइंस के नाम पर मृत विचारों की अपेक्षा नये वैज्ञानिक विचारों व आलोक में मानवीय नैतिकता, धर्म, समाज, दर्शन, मूल्यवत्ता और मानवीय सम्बन्धों की व्याख्या की गयी है। जर्मन दार्शनिक हीगेल ने जिस द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त पर आध्यात्मिकता की व्याख्या की थी, मार्क्स ने उसी द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त के प्रयोग से भौतिकवाद की व्याख्या की राहुल जी की पुस्तक वैज्ञानिक भौतिकवाद मूलतः इन्द्वात्मक भौतिकवाद को ही प्रतिपादित करने के लिए लिखी गयी पुस्तक है। पुस्तक को विद्वान् लेखक ने तीन मुख्य अध्यायों में बाँटकर, इतिहास, दर्शन,

समाजशास्त्र और धर्म आदि की पूरी व्याख्या प्रस्तुत की है। यह पुस्तक राहुल जी ने सबसे पहले 1942 में लिखी थी जबकि देश में गाँधी जी और गाँधीवादी का बड़ा प्रबल समर्थन व्याप्त था। इसमें भारतीय सन्दर्भ को लेकर गाँधीवाद की विवेचना है। भारतीय चिन्तन और दर्शन की दृष्टि से यह पुस्तक सर्वप्रथम भारतीय साहित्य में विशेषकर हिन्दी में एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति करती है। दार्शनिक दृष्टि से 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' अपनी छोटी-सी काया में ही अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय चिन्तन को सूत्र रूप में भारतीय सन्दर्भ के साथ प्रस्तुत करती है। वस्तुतः इस पुस्तक के अध्ययन से कोई भी भारतीय भाषा-भाषी पाश्चात्य चिन्तन प्रणाली को भली-भांति जान सकता है।

12 मानव-समाज/ सांकृत्यायन, राहुल - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2016; 251p.

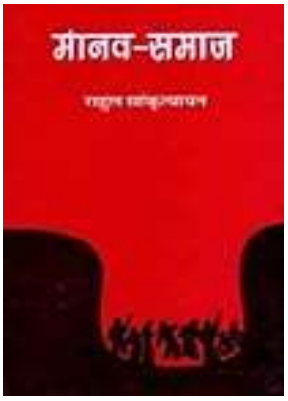

53408

मानव मनुष्य-समाज से अलग नहीं रह सकता था, अलग रहने पर उसे भाषा से ही नहीं चिन्तन से भी नाता तोड़ना होता, क्योंकि चिन्तन ध्वनिरहित शब्द है। मनुष्य की हर एक गति पर समाज की छाप है। बचपन से ही समाज के विधि-निषेधों को हम माँ के दूध के साथ पीते हैं, इसलिए हम उनमें से अधिकांश को बन्धन नहीं भूषण के तौर पर ग्रहण करते हैं, किन्तु, वह हमारे कायिक, वाचिक कर्मों पर पग-पग पर अपनी व्यवस्था देते हैं, यह उस वक्त मालूम हो जाता है, जब हम किसी को उनका उल्लघंन करते देख उसे असभ्य कह उठते हैं। सीप में जैसे सीप प्राणी का विकास होता है उसी प्रकार हर एक व्यक्ति का विकास उसके सामाजिक वातावरण में होता है। मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा अपने परिवार, ठाठ-बाट, पाठशाला, क्रीड़ा तथा क्रिया के क्षेत्र में और समाज द्वारा विकसित भाषा को लेकर होती है। 'मानव समाज' हिन्दी में अपने ढंग की अकेली पुस्तक है।

13 महाभारतकालीन समाज/ भट्टाचार्य, सुखमय -लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2010; 641p.

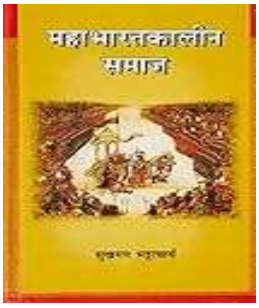

53409

महाभारत भारतीय चिन्तन का विशाल विश्वकोश है। पंडितों में यह भी जल्पना कल्पना चलती रहती है कि इसका कौन-सा अंश पुराना है, कौन-सा अपेक्षाकृत नवीन । कई प्रकार की समाज व्यवस्था का पाया जाना विभिन्न कालों में लिखे गये अंशों के कारण भी हो सकता है। फिर इस ग्रंथ में अनेक श्रेणी के लोगों के आचार-विचार की चर्चा है। सब प्रकार की बातों की संगति बैठना काफी कठिन हो जाता है। इस ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद करके श्रीमती पुष्पा जैन ने उत्तम कार्य किया है। इस अनुवाद के लिये वे सभी सहृदय पाठकों की बधाई की अधिकारिणी हैं।

14 साम्प्रदायिकता का ज़हर/ रणजीत, - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2022; 244p.

53410

साम्प्रदायिकता का जहर' पुस्तक में महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अबुलकलाम अजाद, आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण, डॉ. भीमराव आम्बेडकर, डॉ. राममनोहर लोहिया, शहीदे आजम भगतसिंह, किशन पटनायक, गणेशशंकर विद्यार्थी, प्रेमचन्द, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मस्तराम कपूर, विभूति नारायणराय, पुरुषोत्तम अग्रवाल, असगर अली इन्जीनियर, राजकिशोर, डॉ. रमेन्द्र, डॉ. राम पुनियानी, तस्लीमा नसरीन, मधु किश्वर, इरफ़ान इन्जीनियर आदि के लेख संकलित हैं। स्पष्ट है कि इसमें स्वाधीनता से पूर्व और स्वाधीनता के बाद के भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या के बदलते हुए रूपों और

फैलते हुए आयामों पर, भारतीय मनीषा ने जो भी कुछ सोचा है, एक प्रकार से उसका निचोड़ आ गया है। हिन्दी में शायद ही कोई और ऐसी पुस्तक हो, जिसमें इतने व्यापक फलक पर इस समस्या को रखकर देखा गया है। अन्त में देवी प्रसाद मिश्र की कविता के द्वारा हमारे सबसे बड़े अल्पसंख्यक वर्ग को, हमारे आम नज़रिये की रोशनी में, मर्मस्पर्शी, प्रस्तुति ने, सोने में सुहागे का काम किया है। अपने विषय की एक अपरिहार्य पुस्तक ।

15 पश्चिमी भौतिक संस्कृति का उत्थान और पतन/ रघुवंश - लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2004; 664p.

53411

डॉ. रघुवंश प्रारंभ ही से ऐसी संस्कृति और ऐसे समाज के बारे में सोचते रहे हैं जिसमें सभी मनुष्य शांति और सुख के साथ रह सकें। इससे सम्बन्धित अनेक प्रश्नों, उत्तरों और प्रत्युत्तरों पर वे ऐतिहासिक और तार्किक दृष्टि से ही नहीं मूल्य-परक दृष्टि से भी निरंतर विचार करते रहे हैं। सारा वही चिन्तन सूत्रित होकर इस पुस्तक में विन्यस्त है। पश्चिमी सभ्यता की तर्क केन्द्रित भौतिक सभ्यता की ओर उन्मुखता तथा पूर्वी संस्कृति की • आत्मकेन्द्रीयता दोनों की अतियों और परिणामों पर उन्होंने अत्यंत सजगता के साथ इस पुस्तक में विचार किया है। इसमें अनेक विचारकों के मतों को उन्होंने अपने चिन्तनक्रम में नये सिरे से परिभाषित किया है। गांधी, लोहिया और जयप्रकाश नारायण के विचारों और कार्यों से उन्हें भौतिक सभ्यता के बरक्स एक विकल्प सूझता दिखता है, परंतु यह पुस्तक केवल इन तीन विभूतियों के निष्कर्षो का समन्वय नहीं है। पुस्तक में उन्होंने चर्चा और प्रसंगों के क्रम में इनके विचारों का भी विवेचन किया है और इनके बीच से एक विकल्प प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। वर्तमान अर्थव्यवस्था और सामाजिक स्थिति के परिणामों से वे न केवल परिचित हैं, वे इनका विकल्प भी सुझाते हैं। मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में मानव सभ्यताओं का मूल्यांकन करते हुए रघुवंश जी नकारात्मक नहीं, सकारात्मक, संभावनायुक्त लक्ष्यों का संकेत करते हैं। मनुष्य की शक्तियों पर अपरिमित विश्वास इस पुस्तक में उन्हें अत्यंत गम्भीर रूप से सार्थक विकल्प को तलाश की ओर अभिमुख किये रहा। यह पुस्तक एक लेखक के जीवन भर के अनुभवों, तर्कों और विचारों का प्रतिफल मात्र नहीं है। यह आज के मनुष्य के अनेक जटिल प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयत्न भी है। इसमें विवेकपूर्ण विश्लेषण ही नहीं, गांधी, लोहिया और जयप्रकाश की चिन्ताओं का हल खोजने का अभूतपूर्व प्रयत्न है। पुस्तक पश्चिमी सभ्यता की उपलब्धियों को रेखांकित करती है, परन्तु इसके बावजूद मनुष्यता के क्रमिक क्षरणा के प्रति भी सजग करती है। मनुष्य को कैसे बदला जाय कि वह प्रश्नों और संकटों का स्वयं उत्तर देता चले इस सार्थक विकल्प के लिए यह पुस्तक उन सबके लिए पठनीय है, जो इन प्रश्नों से विचलित होते हैं।

16 सारा आकाश/ यादव, राजेन्द्र - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 208p.

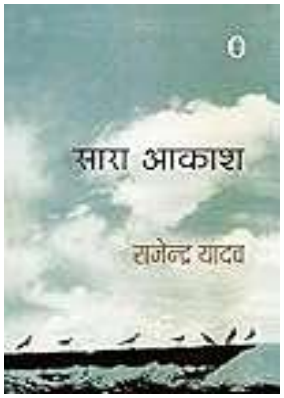

53412

आज़ाद भारत की युवा पीढ़ी के वर्तमान की त्रासदी और भविष्य का नक्शा आश्वासन तो यह है कि सम्पूर्ण दुनिया और सारा आकाश तुम्हारे सामने खुला है- सिर्फ तुम्हारे भीतर इसे जीतने और नापने का संकल्प हो - हाथ-पैरों में शक्ति हो... मगर असलियत यह है कि हर पाँव में बेड़ियाँ हैं और हर दरवाज़ा बन्द है । युवा बेचैनी को दिखाई नहीं देता कि किधर जाए और क्या करे। इसी में टूटता है उसका तन, मन और भविष्य का सपना । फिर वह क्या करे- पलायन, आत्महत्या या आत्मसमर्पण ? आज़ादी के पचास बरसों ने भी इस नक्शे को बदला नहीं - इस अर्थ में 'सारा आकाश' ऐतिहासिक उपन्यास भी है और समकालीन भी । बेहद पठनीय और हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासों में से एक 'सारा आकाश'

चालीस संस्करणों में आठ लाख प्रतियों से ऊपर छप चुका है, लगभग सारी भारतीय और प्रमुख विदेशी भाषाओं में अनूदित है। बासु चटर्जी द्वारा बनी फ़िल्म 'सारा आकाश' हिन्दी की सार्थक कला फ़िल्मों की प्रारम्भकर्ता फ़िल्म है।

17 शह और मात: सुजाता की डायरी/ यादव, राजेन्द्र - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2018; 191p.

53413

शह और मात' दूसरे प्यार की जटिल और कटु कहानी है, जहाँ अपराध - भावना से पीड़ित प्रत्येक पात्र अपना पुनरान्वेषण करता है और अन्त में अपने को एक यंत्रणादायक भ्रान्ति और छलना से घिरा पाता है। उपन्यास की भाषा अपनी ताज़गी, अभिव्यंजना और शक्ति के लिए बार-बार प्रशंसित हुई है। इस उपन्यास को पढ़ना एक अद्‌भुत - लेकिन बेहद आत्मीय-अनुभव से गुज़रना है, जो अपने को देखने की नई दृष्टि देता है। 'शह और मात',...एक शुद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, इसमें दो व्यक्तियों के प्रति तीसरे व्यक्तित्व (यानी सुजाता) की प्रतिक्रियाओं का वर्णन है। अचरज की बात यह है कि देशकाल की स्थितियों से प्रायः कोई मदद न लेते हुए भी लेखक इस उपन्यास को इतना नाटकीय और सजीव बना देता है! सुजाता की उदय से सम्बद्ध दिलचस्पी क्रमशः अधिक तीखी और गहरी होती जाती है। यह दिलचस्पी बहुत कुछ बौद्धिक क़िस्म की है, उपन्यास की नाटकीयता भी एक ख़ास तरह का बौद्धिक मनोवैज्ञानिक विनोद करती है। उपन्यास की नाटकीयता और रोचकता का एकमात्र रहस्य उसकी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता एवं यथार्थ अनुकारिता है। उपन्यास का प्रत्येक पन्ना रोचक है।

18 उखड़े हुए लोग/ यादव, राजेन्द्र - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 364p.

53414

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की त्रासदी को यह उपन्यास दो स्तरों पर उद्‌घाटित करता है-पूँजीवादी शोषण और मध्यवर्गीय भटकाव । आकस्मिक नहीं कि सूरज सरीखे संघर्षशील युवा पत्रकार के साहस और प्रेरणा के बावजूद उपन्यास के केन्द्रीय चरित्र-शरद और जया जिस भयावह यथार्थ से दूर भागते हैं, उनका कोई गंतव्य नहीं। न वे शोषक से जुड़ पा रहे हैं, न शोषित से। छठे दशक के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित राजेन्द्र यादव की इस कथाकृति को पहला राजनीतिक उपन्यास कहा गया था और अनेक लेखकों एवं पत्र-पत्रिकाओं ने इसके बारे में लिखा था। मसलन, श्रीकांत वर्मा ने कलकत्ता से प्रकाशित 'सुप्रभात' में टिप्पणी करते हुए कहा कि, "शासन का पूँजी से समझौता है, ग़रीब मजदूरों पर गोलियाँ चलाकर कृत्रिम आँसू बहानेवाली राष्ट्रीय पूँजी की अहिंसा है। इन सबको लेकर लेखक ने एक मनोरंजक और जीवन्त उपन्यास की रचना की है (और) पूँजीवादी संस्कृति की विकृतियों की अनेक झाँकियाँ दिखाई हैं, " अथवा 'आलोचना' में लिखा गया कि, "उखड़े हुए लोग' में जिन लोगों का चित्रण किया गया है, वे एक ओर रूढ़ियों के कठोर पाश से व्याकुल हैं तथा दूसरी ओर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में निरन्तर लुटते रहने के कारण जम पाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं। इस दुतरफ़ा संघर्ष में रत उखड़े हुए चेतन मध्यवर्गीय जीवन का एक पहलू प्रस्तुत उपन्यास में प्रकट हुआ है। बौद्धिक विचारणा की दृष्टि से यह उपन्यास पर्याप्त स्पष्ट और खरा है।" या फिर चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की यह टिप्पणी कि, “सम्पूर्ण उपन्यास में एक

ऐसी प्रभावशाली तीव्रता विद्यमान है जो पाठक के हृदय में किसी न किसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न किए बिना न रहेगी और (इसमें) अनुभूति की एक ऐसी गहराई है जो हिन्दी के बहुत कम उपन्यासों में मिलेगी।" कहना न होगा कि इस उपन्यास में लेखक ने "जहाँ एक ओर कथानक के प्रवाह, घटनाचक्र की निरन्तर और स्वाभाविक गति तथा स्वच्छ और अबाध नाटकीयता को निभाया है, वहीं दूसरी ओर उसने जीवन से प्राप्त सत्यों और अनुभूतियों को सुन्दर शिल्प और शैली में यथार्थ ढंग से अंकित भी किया है।

19 महाभोज/ भंडारी, मन्नू - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 168p.

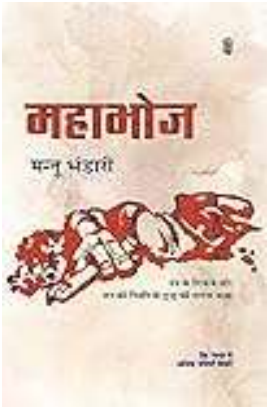

53415

मन्नू भंडारी का महाभोज उपन्यास इस धारणा को तोड़ता है कि महिलाएँ या तो घर-परिवार के बारे में लिखती हैं, या अपनी भावनाओं की दुनिया में ही जीती मरती हैं। महाभोज विद्रोह का राजनैतिक उपन्यास है। जनतंत्र में साधारण जन की जगह कहाँ है? राजनीति और नौकरशाही के सूत्रधारों ने सारे ताने-बाने को इस तरह उलझा दिया है कि वह जनता को फाँसने और घोटने का जाल बनकर रह गया है। इस जाल की हर कड़ी महाभोज के दा साहब की उँगलियों के इशारों पर सिमटती और खुलती है। हर सूत्र के वे कुशल संचालक हैं। उनकी सरपरस्ती में राजनीति के खोटे सिक्के समाज चला रहे हैं-खरे सिक्के एक तरफ़ फेंक दिए गए हैं। महाभोज उपन्यास भ्रष्ट भारतीय राजनीति के नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करता है। अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में इस महत्वपूर्ण उपन्यास के अनुवाद हुए हैं और महाभोज नाटक तो दर्जनों भाषाओं में सैकड़ों बार मंचित होता रहा है। 'नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा' (दिल्ली) द्वारा मंचित महाभोज नाटक राष्ट्रीय नाट्य मंडल की गौरवशाली प्रस्तुतियों में अविस्मरणीय है। हिन्दी के सजग पाठक के लिए अनिवार्य उपन्यास है महाभोज ।

20 चल खुसरो घर आपने/ शिवानी - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 132p.

53416

कैसी विचित्र पुतलियाँ लग रही थीं मालती की। जैसे दगदगाती हीरे की दो कनियाँ हों. बार-बार वह अपनी पतली जिला को अपने रक्तवर्णी अधरों पर फेर रही थी, यह तो नित्य की सौम्य शान्त स्वामिनी नहीं, जैसे भयंकर अग्निशिखा लपटें ले रही थी...।' यह कहानी है। कुमुद की, जिसे बिगड़ैल भाई-बहनों और आर्थिक, पारिवारिक परिस्थितियों ने सुदूर बंगाल जाकर एक राजासाहब की मानसिक रूप से बीमार पत्नी की परिचर्या का दुरूह भार थमा दिया है। मानसिक रूप से विक्षिप्त लोगों का मनोसंसार, निम्नमध्यवर्गीय परिवार की कमासुत अनब्याही बेटी और उसकी ग्लानि से दबी जाती माँ का मनोविज्ञान, शिवानी के पारस स्पर्श से समृद्ध होकर इस उपन्यास को एक अद्‌भुत नाटकीय कलेवर और पठनीयता देते हैं। शिवानी का 'विवर्त' मानव जीवन की रहस्यमयता का एक विलक्षण पहलू प्रस्तुत करता है। चरित्र नायिका ललिता गरीब माता-पिता की सात पुत्रियों में सबसे छोटी होने पर भी स्वतंत्र मेधा और तेजस्विनी है और डबल एम.ए. करके हेडमिस्ट्रेस बन जाती है। वह विवाह नहीं करना चाहती और आने वाले सभी रिश्तों को ठुकरा देती है परन्तु प्रारब्ध उसके साथ ऐसा खेल खेलता है कि वह स्तब्ध रह जाती है। अपने अन्य सभी उपन्यासों की भाँति शिवानी का यह उपन्यास भी पाठक को मंत्र-मुग्ध कर देने में समर्थ है

21 कालिंदी/ शिवानी, - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2018; 196p.

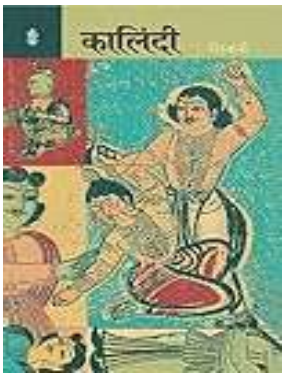

53417

एक बुजुर्ग ने मुझे रोक कर कहा-" कालिन्दी पढ़ रहा हूँ।... आहा कैसा चित्र खींचा है उन दिनों का। लगता है एक बार फिर उसी अल्मोड़ा में पहुँच गया हूँ।" "मुझे लगा मुझे कुमाऊँ का सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार मिल गया। "... शिवानी के यह शब्द उपन्यास की पाठकों तक सहज पहुँच और स्वयं उनकी अपने लाखों सरल, अनाम पाठकों के प्रति अगाध समर्पण भाव का आईना है। डॉक्टर कालिन्दी एक स्वयंसिद्धा लड़की है, जिसने अपने जीवन के झंझावातों से अपनी शर्तों पर मुकाबला किया। कुमाऊँ की स्त्री शक्ति के सुदीर्घ शोषण और उसकी अदम्य सहनशक्ति और जिजीविषा का दस्तावेज यह उपन्यास नए और पुराने के टकराव और पुनर्मृजन की गाया भी है। शिवानी की मातृभूमि अल्मोड़ा और उस अंचल के गाँवों की मिट्टी-वयार की गंध से भरी कालिन्दी की व्यथा-कथा भारत की उन सैकड़ों लड़कियों की महागाथा है, जो आधुनिकता का स्वागत करती हैं, लेकिन परम्परा की डोर को भी नहीं काट पातीं। अपने पुरुष उत्पीड़कों और शोषकों के प्रति भी अनवक स्नेह-ममत्व बनाए रखनेवाली कालिन्दी और उसकी एकाकिनी माँ अन्नपूर्णा क्या आज भी देश के हर अंचल में मौजूद नहीं ?

22 पाँच आँगनों वाला घर/ मिश्र, गोविन्द - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 216p.

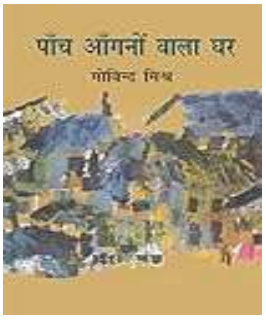

53418

करीब पचास वर्षों में फैली पाँच आँगनों वाला घर के सरकने की कहानी दरअसल तीन पीढ़ियों की कहानी है- एक वह जिसने 1942 के आदर्शों की साफ़ हवा अपने फेफड़ों में भरी, दूसरी वह जिसने उन आदर्शों को धीरे-धीरे अपनी हथेली से झरते देखा और तीसरी वह जो उन आदर्शों को सिर्फ पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ सकी। परिवार कैसे उखड़कर सिमटता हुआ करीब-करीब नदारद होता जा रहा है - व्यक्ति को उसकी वैयक्तिकता के सहारे अकेला छोड़कर! गोविन्द मिश्र के इस सातवें उपन्यास को पढ़ना अकेले होते जा रहे आदमी की उसी पीड़ा से गुज़रना है।

23 सहेला रे/ पाण्डे, मृणाल - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2017; 198p.

53419

भारतीय संगीत का एक दौर रहा है जब संगीत के प्रस्तोता नहीं, साधक हुआ करते थे। वे अपने लिए गाते थे और सुननेवाले उनके स्वरों को प्रसाद की तरह ग्रहण करते थे। ऐसा नहीं कि आज के गायकों कलाकारों की तरह वे सेलेब्रिटी नहीं थे, वे शायद उससे भी यदा कुछ लेकिन कुरुचि के आक्रमणों से वे इतनी दूर हुआ करते थे। जैसे पापाचारी देहधारियों से दूर कहीं देवता रहें। बाजार के इशारों पर न उनके अपने पैमाने झुकते थे, न उनकी वह स्वर- शुचिता जिसे वे अपने लिए तय करते थे। उनका बाजार भी गलियों-कूचों में फैला आज सा सीमाहीन बाजार नहीं था, वह सुरुचि का एक किला था जिसमें अच्छे कानवाले ही प्रवेश पा सकते थे। मृणाल पाण्डे का यह उपन्यास टुकड़ों टुकड़ों में उसी दुनिया का एक पूरा चित्र खींचता है। केन्द्र में है पहाड़ पर अंग्रेज बाप से जन्मी अंजलिवाई और उसकी माँ हीरा। दोनों अपने वक़्तों की बड़ी और मशहूर गानेवालियाँ न सिर्फ गानेवालियाँ बल्कि खूबसूरती और सभ्याचार में अपनी मिशाल आप पहाड़ की बेटी हीरा एक अंग्रेज अफ़सर

एडवर्ड के. हिवेट की नजर को भायी तो उसने उस समय के अंग्रेज अफसरों की अपनी ताकत का इस्तेमाल करते हुए उसे अपने घर बिठा लिया और एक बेटी को जन्म दिया, नाम रखा विक्टोरिया मसीह। हिवेट की लाश एक दिन जंगलों में पाई गई और नाज-नखरों में पल रही विक्टोरिया अनाथ हो गई। शरण मिली बनारस में जो संगीत का और संगीत के पारखियों का गढ़ था। लेकिन यह कहानी उपन्यासकार को कहीं लिखी हुई नहीं मिली, इसे उसने अपने उद्यम से, यात्राएँ करके, लोगों से मिलकर बातें करके, यहाँ-वहाँ बिखरी लिखित- मौखिक जानकारियों को इकट्ठा करके पूरा किया है। इस तरह पत्र-शैली में लिखा गया यह उपन्यास कुछ-कुछ जासूसी उपन्यास जैसा सुख भी देता है। मृणाल पाण्डे अंग्रेजी में भी लिखती हैं और हिन्दी में भी। इस उपन्यास में उन्होंने जिस गद्य को सम्भव किया है, वह अनूठा है। वह सिर्फ़ कहानी नहीं कहता, अपना पक्ष भी रखता चलता है और विपक्ष की पहचान करके उसे धराशायी भी करता है। इस कथा को पढ़कर संगीत के एक स्वर्ण काल की स्मृति उदास करती है और जहाँ खड़े होकर कथाकार यह कहानी बताती हैं, वहाँ से उस वक्त से कोफ़्त भी होती है जिसके चलते यह सब हुआ, या होता है।

24 पटरंगपुर पुराण/ पाण्डे, मृणाल - राधाकृष्ण, दिल्ली, 2014; 164p.

53420

रचनात्मक गद्य की गहराई और पत्रकारिता की संप्रेषणीयता से समृद्ध मृणाल पांडे की कथाकृतियाँ हिन्दी जगत में अपने अलग तेवर के लिए जानी जाती हैं। उनकी रचनाओं में कथा का प्रवाह और शैली उनका कथ्य स्वयं बुनता है। 'पटरंगपुर पुराण' के केंद्र में पटरंगपुर नाम का एक गाँव है जो बाद में एक कस्बे में तब्दील हो जाता है। इसी गाँव के विकास-क्रम के साथ चलते हुए यह उपन्यास कुमायूँ-गढ़वाल के पहाड़ी क्षेत्र के जीवन में पीढ़ी-दर-पीढ़ी आए बदलाव का अंकन करता है । कथा-रस का सफलतापूर्वक निर्वाह करते हुए इसमें काली कुमायूँ के राजा से लेकर भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति तक के समय को लिया गया है । परिनिष्ठित हिन्दी के साथ-साथ पहाड़ी शब्दों और कथन- शैलियों का उपयोग इस उपन्यास को विशेष रूप से आकर्षक बनाता है, इसे पढ़ते हुए हम न केवल सम्बन्धित क्षेत्र के लोक-प्रचलित इतिहास से अवगत होते हैं, बल्कि भाषा के माध्यम से वहाँ का जीवन भी अपनी तमाम सांस्कृतिक और सामाजिक भंगिमाओं के साथ हमारे सामने साकार हो उठता है। कहानियों-किस्सों की चलती-फिरती खान विष्णुकुटी की आमा की बोली में उतरी ये कथा सचमुच एक पुराण जैसी ही ठहरी ।

25 आधुनिकता और पैगन सभ्यताएँ: सुरेश शर्मा से उदयन वाजपेयी का संवाद/ शर्मा, सुरेश - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 128p.

53421

बातचीत सोच का जरिया हो, सोच का पैमाना हो, सोच का ध्येय भी हो यह बात सिद्ध करते थे सुरेश शर्मा। बातचीत में कहना, सुनना और उसे चित्त धरना तीनों क्रिया शामिल है। सुरेश जितनी गहराई से सोचते थे उतनी ही सतर्कता से सुनते भी थे। और उनके कहने के अन्दाज़ की तो क्या बात करें! शब्दों से आशिक़ी करते थे वह। शब्दों को टटोल कर उनका अर्थ विस्तार करते थे और उन्हें तराश कर अपने अनूठे अन्दाज़ में रखते थे। संगतराश थे वह। उदयन वाजपेयी के साथ यह बातचीत सुरेश के सोचने के तरीक़े, उसका व्याप, गहराई और शब्द प्रेम का सुन्दर उदाहरण है। जब वर्तमान की इस पल की बात करते थे तब भी

उसमें एक लम्बी ऐतिहासिक चेतना साथ आती थी, उनका इतिहास-बोध कोई बोझ रूप नहीं था वह उनके चित्त का, उनकी चेतना का अभिन्न और अनिवार्य अंग था। सुरेश का मनोजगत् सदियों की मानव जंखना और पुरुषार्थ को उसके आनन्द और उसकी वेदना के साथ अपने में समेटे हुए था। पाठक इस ग्रन्थ में सुरेश शर्मा और उनके साथ उदयन वाजपेयी की ध्वनि को सुन पायेंगे।

26 पाश्चात्य दर्शन और सामाजिक अन्तराविरोध/ शर्मा, रामविलास - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016; 360p.

53422

यह पुस्तक लगभग ढाई हजार साल में फैले पाश्चात्य दर्शन के इतिहास को समेटती है। किन्तु उक्त ऐतिहासिक विकासक्रम का सिलसिलेवार अध्ययन करना इसका उद्देश्य नहीं है। इस लिहाज से देखें तो यह ध्यान में रखना होगा कि रामविलासजी उन इतिहासकारों में से नहीं थे, जो आँकड़ों को अतिरिक्त महत्त्व देते हैं। दर्शन के इतिहास से सम्बन्धित अनिर्णीत विवादों की विवेचना के लक्ष्य के मद्देनजर रामविलासजी अपनी मान्यता प्रस्तुत करने में किसी दुविधा या हिचक का अनुभव नहीं करते । भाषाविज्ञान, पुरातत्त्व, इतिहास, समाजशास्त्र और साहित्य के अद्यतन ज्ञान से लैस होने तथा चिन्तन की द्वन्द्वात्मक पद्धति के सटीक विनियोग के परिणामस्वरूप उनके निष्कर्ष वैचारिक उत्तेजना तो पैदा करते ही हैं, रोचक और ज्ञानवर्द्धक भी होते हैं। मानव-सभ्यता के विकास के क्रम में दर्शन का उद्भव और विकास कैसे हुआ ? क्या यूनानी दर्शन के उद्भव के मूल में मिस्र, बेबिलोन, भारत, चीन, आदि का भी योगदान था ? समाज की ठोस अवस्थाओं के सापेक्ष सन्दर्भ के बिना क्या किसी दार्शनिक चिन्तन, किसी दार्शनिक धारा अथवा अवधारणाओं का अभिप्राय समुचित ढंग से समझा जा सकता है ? इन प्रश्नों के अतिरिक्त, दर्शन को ज्ञान की अन्य शाखाओं और अनुशासनों के साथ किस प्रकार समझा जा सकता है, इस दृष्टि से भी पाश्चात्य दर्शन पर रामविलासजी का लेखन सार्थक और मूल्यवान है। यूनानी दर्शन, रिनासां काल के चिन्तन, दार्शनिक प्रतिपत्तियों पर सामाजिक अन्तर्विरोध के प्रभाव, अधिरचना और बुनियाद के जटिल अन्तर्सम्बन्ध, एशिया - अफ्रीका की सभ्यता के प्रति पश्चिमी दृष्टि के पूर्वग्रह, आदि पर रामविलासजी दो टूक ढंग से अपनी बात कहते हैं। हिन्दीभाषी लोगों के लिए यह पुस्तक दर्शन सम्बन्धी जरूरी ज्ञान का एक सुग्राह्य संचयन है।

27 हिंदू परम्पराओं का राष्ट्रीयकरण: भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उन्नीसवी सदी का बनारस/ डालमिया, वसुधा - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016; 436p.

53423

अंग्रेजी में आज से उन्नीस साल पहले प्रकाशित यह पुस्तक एक ऐसे ढांचे की प्रस्तावना करती है जो भारतेंदु के पारंपरिक और परिवर्तनोन्मुख पहलुओं की एक साथ सुसंगत रूप में व्याख्या कर सके। इस ढांचे में भारतेंदु हिंदुस्तान के उस उदीयमान मध्यवर्ग के नेतृत्वकारी प्रतिनिधि के रूप में सामने आते हैं जो पहले से मौजूद दो मुहावरों के साथ अंतरक्रिया करते हुए एक तीसरे आधुनिकतावादी मुहावरे को गढ़ रहा था। ये तीन मुहावरे क्या थे, इनकी अंतरक्रियाओं की क्या पेचीदगियां थीं, सांप्रदायिकता और राष्ट्रवाद के सहविकास में आरंभिक सांप्रदायिकता और आरंभिक राष्ट्रवाद को चिह्नित करनेवाला यह तीसरा मुहावरा किस तरह समावेशन अपवर्जन की दोहरी प्रक्रिया के बीच हिंदी भाषा और

साहित्य को हिंदुओं की भाषा और साहित्य के रूप में रच रहा था और इस तरह समेकित रूप से राष्ट्रीय भाषा, साहित्य तथा धर्म की गढ़त का ऐतिहासिक किरदार निभा रहा था, किस तरह नई हिंदू संस्कृति के निर्माण में एक-दूसरे के साथ जुड़ती भिड़ती तमाम शक्तियों के आपसी संबंधों को भारतेंदु के विलक्षण व्यक्तित्व और कृतित्व में सबसे मुखर अभिव्यक्ति मिल रही थी - यह किताब इन अंतस्संबंधित पहलुओं का एक समग्र आकलन है। यहां बल एकतरफ़ा फ़ैसले सुनाने के बजाय चीज़ों के ऐतिहासिक प्रकार्य और गतिशास्त्र को समझने पर है। ध्वस्त करने या महिमामंडित करने की जल्दबाज़ी वसुधा डालमिया के लेखन का स्वभाव नहीं है, मामला भारतेंदु का हो या भारतेंदु पर विचार करनेवाले विद्वानों का। हिंदी में इस किताब का आना एकाधिक कारणों से जरूरी था। नई सूचनाओं और स्थापनाओं के लिए तो इसे पढ़ा ही जाना चाहिए, साथ ही, हर तथ्य को साक्ष्य से पुष्ट करनेवाली शोध प्रविधि, हर कोण से सवाल उठानेवाली विश्लेषण विधि और खंडन-मंडन के जेहादी जोश से रहित निर्णय-पद्धति के नमूने के रूप में भी यह पठनीय है।

28 भारत हमें क्या सिखा सकता है?/ मूलर, मैक्स - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 174p.

53424

भारतीय साहित्य और संस्कृति पर मैक्स मूलर के अगाध ज्ञान को देखते हुए इंग्लैंड की सरकार ने उन्हें 1882 में आई.सी.एस. पास हुए अंग्रेज युवकों के प्रशिक्षण के दौरान भारतीय धर्म, साहित्य और संस्कृति पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया, ताकि ये भावी प्रशासक भारत की आत्मा को उचित ढंग से समझ सकें। इस अवसर पर प्रो. मैक्स मूलर ने सात व्याख्यान दिए जिन्हें बाद में पुस्तक के रूप में 1882 में ही प्रकाशित कर दिया गया। यह पुस्तक उसी का अनुवाद है। इन व्याख्यानों में उन्होंने बताया कि भारतीय समाज को पश्चिम से कमतर समझना भूल है। उन्होंने वेदों और यहाँ के पुराख्यानों की व्याख्या करते हुए बताया कि ये सब हिन्दुओं की जीवन-प्रणाली के प्राण हैं। आज भी उनके ये व्याख्यान भारतीय अस्मिता और प्रज्ञा को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इन व्याख्यानों में वे क्रमशः भारत की भौगोलिक सम्पन्नता, सांस्कृतिक विविधता, चारित्रिक जटिलता और धार्मिकता पर अपने गहन अध्ययन की रोशनी में प्रकाश डालते हैं। वे बताते हैं कि नृतत्त्वशास्त्रियों, भाषाशास्त्रियों, इतिहासकारों, समाजशास्त्रियों और धार्मिक चिन्तकों के लिए भारत में कितना कुछ है, जिस पर वे काम कर सकते हैं। एक पूरा व्याख्यान इस श्रृंखला में उन्होंने सिर्फ इस धारणा को निरस्त करने के लिए दिया जिसके अनुसार भारत के हिन्दू लोगों में सत्य के प्रति सम्मान नहीं है। इस पूर्वग्रह के विरुद्ध उन्होंने अनेक विद्वानों के मन्तव्य देते हुए और कई ग्रंथों के उदाहरण देते हुए सिद्ध किया कि ऐसा नहीं है। मैक्स मूलर को लेकर एक नकारात्मक विचार उस धारा के साथ भी चलता है जिसमें मैकाले के अंग्रेजी को लेकर किए गए प्रयासों को एक साजिश करार दिया जाता है, तो भी यह जानने के लिए कि मैक्स मूलर स्वयं भारत और भारतीय संस्कृति के बारे मैं क्या सोचते थे, यह पुस्तक एक अनिवार्य पाठ है।

29 धर्म सत्ता और हिंसा/ पुनियनी, राम (संपादक) - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016; 288p.

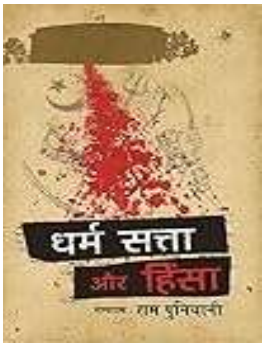

53425

बीते वर्षों के दौरान साम्प्रदायिकता का उभार भारतीय राजनीति में एक बड़े दावेदार के रूप में हुआ है। सो भी इतने जोर-शोर से कि हमारे संवैधानिक ढाँचे के लिए ख़तरा बनता दिखाई दे रहा है। अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक विमर्श में भी उत्तरोत्तर धार्मिक शब्दावली का प्रयोग ज्यादा दिखने लगा है। विश्व के भी मानवाधिकार आन्दोलन इसको एक बड़ी चुनौती के रूप में देख रहे हैं। इस पुस्तक में शामिल सत्रह मौलिक आलेखों की पृष्ठभूमि यही है जिसमें अमेरिका पर सितम्बर 11 का हमला, अफ़ग़ानिस्तान और इराक़ पर अमेरिकी आक्रमण, दुनिया-भर में इस्लाम का शैतानीकरण और भारत के मुम्बई व गुजरात के दंगों को ख़ास तौर पर रेखांकित किया गया है। ये आलेख बताते हैं कि भीड़ को धर्म के नाम पर भड़काकर वंचित समूहों के भीतर किसी भी विद्रोह की सम्भावना को कैसे असम्भव कर दिया जाता है और धर्म-आधारित राजनीति किस तरह आज उदारीकरण, भूमंडलीकरण और निजीकरण के साथ गठजोड़ करके चल रही है। यह पुस्तक मुस्लिम पिछड़ेपन के मिथक, हिन्दुत्व की विभाजनकारी राजनीति को आप्रवासियों की आर्थिक मदद आदि मुद्दों पर भी तथ्याधारित विचार करती है और अब आदिवासी, दलित और स्त्रियों के साथ अन्य अल्पसंख्यक समूह कैसे उसके निशाने पर आ रहे हैं यह भी बताती है। हिन्दुत्व पर लगभग हर कोण से विस्तृत परिदृश्य में प्रश्नवाचक समीक्षा करनेवाली यह पुस्तक राजनीति, समाजविज्ञान, इतिहास और धर्म आदि सभी क्षेत्रों के अध्येताओं के लिए पठनीय है।

30 पितृसत्ता के नए रूप: स्त्री और भूमंडलीकरण/ यादव, राजेन्द्र - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 227p.

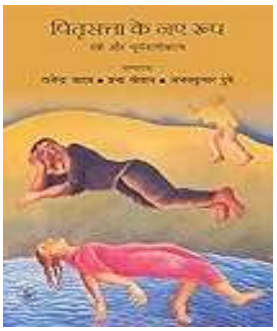

53426

भूमंडलीकरण कहता है कि उसके तहत हुआ बाजारों का एकीकरण लैंगिक रूप से तटस्थ है अर्थात् वह मर्दवादी नहीं है। यह एक ऐसा दावा है जो कभी पुनर्जागरण के मनीषियों ने भी नहीं किया था। भूमंडलीकरण इससे भी एक क़दम आगे जाकर कहता है कि नारीवाद के किसी पक्ष से कोई ताल्लुक़ न रखते हुए भी उसने स्त्री के सशक्तीकरण के क्षेत्र में अन्यतम उपलब्धियाँ हासिल की हैं। सवाल यह है कि परिवार, विवाह की संस्था, धर्म और परम्परा को कोई क्षति पहुँचाने का कार्यक्रम अपनाए बिना यह चमत्कार कैसे हुआ? स्त्री को प्रजनन करने या न करने का अधिकार नहीं मिला, न ही उसके प्रति लैंगिक पूर्वाग्रहों का शमन हुआ, न ही उसे इतरलिंगी सहवास की अनिवार्यताओं से मुक्ति मिली और न ही उसकी देह का शोषण ख़त्म हुआ फिर बाज़ार ने यह सबलीकरण कैसे कर दिखाया ? ख़ास बात यह है कि भूमंडलीकरण ख़ुद को लोकतंत्र का पैरोकार बताता है और बाज़ार की चौधराहट का कट्टर समर्थक होते हुए भी एक सीमा तक राज्य के हस्तक्षेप के लिए गुंजाइश छोड़ता है; लेकिन आधुनिकतावाद के गर्भ से निकली अधिकतर संस्थाओं और विचारों को पुष्ट करनेवाला यह भूमंडलीकरण नारीवाद की उपेक्षा करता है। दरअसल इसका सूत्रीकरण अस्सी और नब्बे के उन दशकों में हुआ जिनमें नारीवाद अपने ही गतिरोधों से जूझ रहा था। इसी ज़माने में भूमंडलीकरण ने आधुनिक विचारधाराओं में सिर्फ़ नारीवाद को ही असफल घोषित किया और इस तरह पूँजीवादी आधुनिकता ने पहली बार पितृसत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष का दायित्व पूरी तरह त्याग दिया। मार्च, 2001 में

प्रकाशित 'हंस' के 'स्त्री-भूमंडलीकरण : पितृसत्ता के नए रूप' विशेषांक में यह शिनाख्त करने की कोशिश की गई थी कि श्रमिकों की एक विशाल फ़ौज के रूप में स्त्री को आत्मसात् करनेवाले भूमंडलीकरण में नर-नारी सम्बन्धों के विभिन्न समीकरण क्या हैं और उसके तत्त्वावधान में स्त्री कितने प्रतिशत व्यक्ति बनी है और कितने प्रतिशत वस्तु। 'पितृसत्ता के नए रूप : स्त्री और भूमंडलीकरण' कुछ रचनाओं को छोड़कर उसी अंक का पुस्तक रूप है।

31 धर्म और जेन्डर: धर्म संस्था के जरिए जेन्डरगत मानस का निर्माण / इलीना सेन और ज़ेबा इमाम/ सेन, इलीना (संपादक) - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2018; 232p.

53427

जेंडरगत मानसिकता से ग्रस्त नागरिकों के निर्माण और पुनर्निर्माण में धर्म की भूमिका से संबंधित अध्ययन की ज़रूरत सिर्फ़ यह मान लेने के चलते ही नहीं है कि धर्म रोज़मर्रा के हमारे जीवन के संरचनात्मक ढाँचे में रची- बसी एक प्रभावशाली संस्था है, बल्कि अब यह ज़रूरत इसलिए और ज़्यादा है क्योंकि वर्तमान राजनीतिक संदर्भ में हमारी अस्मिताओं को लामबंद करने या मज़बूत बनाने में भी यह प्रभावी भूमिका निभा रहा है। यह संचयन दो भागों में विभाजित है। पहले भाग के अंतर्गत दस आलेखों का संकलन है जो भारत, पाकिस्तान और चीन से संबंधित हैं। इन आलेखों को तीन विषयवस्तुओं के तहत बाँटा गया है। पहली विषयवस्तु में शामिल तीन आलेख जाति और धर्म के बीच अंतर्संवाद और उसके जेंडरगत परिणामों के बारे में सैद्धांतिक चर्चा करते हैं। दूसरी विषयवस्तु में वे आलेख समाहित हैं जो भिन्न-भिन्न तरीक़ों से जेंडर का निर्माण करनेवाले सांस्थानिक मानकों और नियमों की श्रेष्ठता के आत्मसातीकरण की चर्चा करते हैं। तीसरी श्रेणी में उन लेखों को शामिल किया गया है जो सीधे तौर पर महिलाओं के आंदोलन से संबंधित हैं या जहाँ धर्म के साथ नारीवादी संबद्धता है। इस अंतर्संबंध की अभिव्यक्ति अस्मिता-विमर्श, कट्टरपंथी सामूहिकता या धार्मिक-राजनीतिक आंदोलनों के रूप में होती है। संचयन के दूसरे भाग में धार्मिक दृष्टि से महिलाओं के आचरण- संबंधी मानकों को निर्देशित करनेवाली हिंदी और उर्दू की एक-एक प्रचलित पुस्तक ('बहिश्ती जेवर' और 'नारी शिक्षा') के चुनिंदा हिस्सों को शामिल किया गया है। ये उपदेशात्मक पुस्तकें हिंदू और मुस्लिम महिलाओं के आचरण और व्यवहार से जुड़ी जेंडरगत परम्पराओं को मज़बूत करती हैं। आशा है, पाठकों के सहयोग से यह शुरुआत एक सफल अंजाम तक पहुँचेगी।

32 जनजातीय मिथक: उड़िया आदिवासियों की कहानियाँ/ एलविन, वेरियर - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011; 520p.

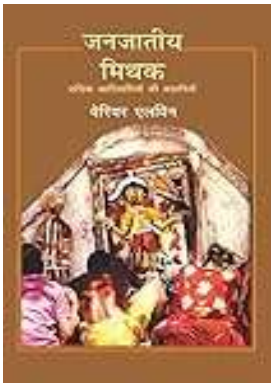

53428

यह पुस्तक हमें उड़ीसा की जनजातियों की लगभग एक हजार लोककथाओं से परिचित कराती है। इसमें भतरा, बिंझवार, गदबा, गोंड और मुरिया, झोरिया और पेंगू, जुआंग, कमार, कोंड, परेंगा, सांवरा आदि की लोककथाओं को संग्रहीत किया गया है। इन कहानियों के माध्यम से आदिवासियों के जीवन को सही परिप्रेक्ष्य में देखा-परखा जा सकता है। इन जनजातियों में आपस में अनेक समानताएं हैं। उनकी दैनन्दिन जीवन शैली, उनकी अर्थव्यवस्था, उनके सामाजिक संगठन, यहाँ तक कि उनके विश्वासों और आचार-व्यवहार में भी समानता पाई जाती है। जहाँ भी उनमें विभिन्नताएँ हैं वह जातीय वैशिष्ट्य के कारण

नहीं, वरन परिवेश, शिक्षा और हिन्दू प्रभाव के फलस्वरूप आई हैं। तुलनात्मक दृष्टि से एक आदिम कोंड एक आदिम दिदयि से अधिक समानता रखता है बजाय उत्तर-पश्चिम पर्वतीय क्षेत्र के किसी कोंड के जो रसेलकोंडा मैदानी क्षेत्र के कोंड के अधिक समीप लगता है। इन रोचक कहानियों का क्रमवार व विषयवार संयोजन किया गया है ताकि पाठक की तारतम्यता बनी रहे। सदियों से दबे आदिवासियों की ये कहानियाँ जहाँ सामान्य पाठक के लिए ज्ञानवर्द्धक हैं, वहीं शोधकर्त्ताओं को शोध के लिए एक नई जमीन भी मुहैया कराती हैं।

33 मुरिया और उनका घोटूल/ एलविन, वेरियर - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 347p. (भाग 1) | 539p.

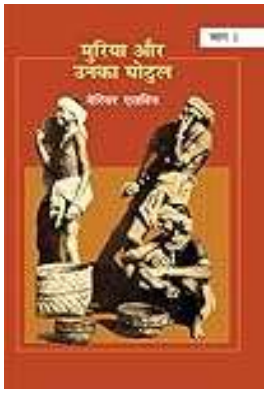

53429

मुरिया और उनका घोटुल-1 के इस भाग में बस्तर के मुरिया आदिवासियों के जीवन से जुड़े उन सभी आयामों को रेखांकित किया गया है। जिनसे अभी तक हम अनभिज्ञ थे। यहाँ घोटुल है जिसका उद्गम स्रोत है लिंगो पेन देवता । यह गाँव के बच्चों और युवाओं का निवास स्थान है। कबीले के हर अविवाहित लड़के और लड़की को इसका सदस्य बनना पड़ता है। घोटुल की सदस्यता मात्र मन बहलाव का साधन नहीं है बल्कि धार्मिक आस्थाओं से जुड़ी एक सामाजिक परम्परा है। इस परम्परा को कड़े नियमों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। यहाँ लड़कों को चेलिक और लड़कियों को मुटियारी कहा जाता है। लड़कों का नेता सरदार है तो लड़कियों की नेता बैलोसा है। मुरिया जीवन के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक पहलुओं का वर्णन करता हुआ घोटुल सिर्फ एक रात्रि क्लब है; दिन में इसके सदस्यों को खाने की व्यवस्था, खेती, शिकार, मछली पकड़ना, शहद एकत्रित करना व सागो ताड़ का रस तथा ईंधन जुटाने में व्यस्त कर दिया जाता है। मुरिया जीवन को खोलती इस पुस्तक में मुरिया समुदाय के जीवन के हर पहलू, उनकी आजीविका, कबीले का संगठन, बचपन, युवावस्था, धर्म और उनके देवताओं का वर्णन विस्तार से प्रामाणिक ढंग से किया गया है।Summary: मुरिया और उनका घोटुल-2 में मुरिया तथा घोटुल की सभी परम्पराओं को क्रमवार रूप से सँजोया गया है। घोटुल में एक सरल, कामुकता से पूर्ण और गहरी भावना से ओत- प्रोत यौन जीवन है जिसका संचालन चेलिक और मुटियारी मिलकर करते हैं। पुस्तक हमें घोटुल का प्रारम्भ कैसे हुआ, इसके भवन किस तरह के थे, इसकी सदस्यता और नियम, श्रृंगार और वस्तुएँ, अनुशासन, सेक्स, नृत्य और गीत, मनोरंजन, विवाह, नैतिक मानदंड आदि सभी पहलुओं के विषय में तथ्यात्मक जानकारी देती है। पुस्तक में घोटुल संस्कृति के अतिरिक्त मुरिया संस्कृति के अन्य पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है। सेक्स के प्रति मुरिया दृष्टिकोण तथा विवाह से पूर्व बहुत-से साथियों के साथ यौन-सम्बन्ध बनाने की समस्या का हल ढूँढ़ने की भी कोशिश की गई है। मुरिया जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों के साथ-साथ यहाँ हास-परिहास और लोककथाओं के जरिए घोटुल के प्रति वफादार मुरिया की उत्सुकता की भी झलक दिखाई देती है। वेरियर एलविन की अंग्रेजी पुस्तक से अनूदित यह पुस्तक मुरिया समुदाय के जीवन को जीवन्त, तर्कसंगत, माननीय और आकर्षक रूप में देखने का सुन्दर प्रयास है।

34 हत्या और आत्महत्या के बीच मारिया/ एलविन, वेरियर - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020; 272p.

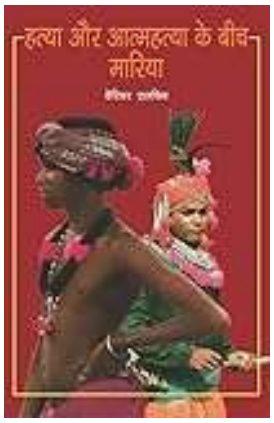

53430

इस किताब का आधारभूत उद्देश्य हिंसा- अपराधों के पीछे छिपे मनोविज्ञान को समझना है जो सबसे कम बिगड़े तथा भारतीय आदिवासियों में श्रेष्ठ प्रजाति के लोगों द्वारा किए जाते हैं, तथा वे परिस्थितियाँ जो यहाँ के आदमी, औरतों को आत्महत्या करने के लिए उकसाती हैं। ऐसी कृति तथा शोध कार्य उन आदिवासियों को, जो जजों तथा मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधी करार दिए जाते हैं, सावधानी तथा बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से समझने तथा उनके साथ सलूक करने के लिए मार्गदर्शन दे सकते हैं। यह कृति निश्चित रूप से दंडित करने तथा आदिवासी कैदियों के साथ जेल में किए जानेवाले व्यवहार पर भी प्रश्न उठाती है। इस किताब के शुरुआती पृष्ठों में मारिया जीवन की विविधता को सारांश में बतलाया गया है। इस संक्षिप्तता में ही उनके अनेक विविध पक्षों को उजागर किया गया है। यह किताब अपराधों के अध्ययन की अपेक्षा सामाजिक नृतत्त्व विज्ञान के लिए एक अमूल्य योगदान है।

35 एक गोंड गाँव में जीवन/ एलविन, वेरियर- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020; 136p.

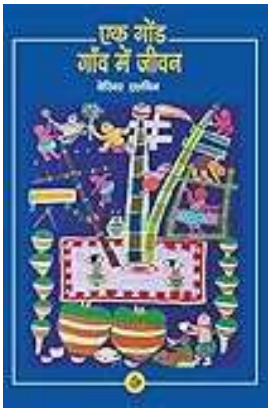

53431

वेरियर एलविन एक युवा अंग्रेज थे जो मिशनरी बनकर भारत आए और बाद में भारत के एक महत्त्वपूर्ण मानव-विज्ञानी बने । गांधी जी की प्रेरणा और जमनालाल बजाज के मार्गदर्शन में वेरियर एलविन ने मैकाल पहाड़ी पर बसे एक गोंड गाँव करंजिया में बसने का निर्णय लिया और उस क्षेत्र के लोगों के कल्याण के लिए ख़ुद को समर्पित कर दिया। 'एक गोंड गाँव में जीवन' उनके करंजिया में बिताए 1932 से 1936 तक के जीवन का रोजनामचा है जहाँ वे गोंड लोगों की तरह ही स्वयं और कुछ मित्रों की सहायता से बनाई गई एक झोपड़ी में रहते थे। यह जीवन्त, मर्मस्पर्शी और उपख्यानात्मक पुस्तक है जिसमें एलविन ने निरीक्षण की अपनी मानव-विज्ञानी क्षमता और स्वाभाविक विनोदप्रियता के संयोग से गोंड जीवन की बहुरंगी छवि और आश्रम, जिसमें हिन्दू मुसलमान, ईसाई, गोंड आदि सभी शामिल हैं, की आन्तरिक उपलब्धि का उत्कृष्ट वर्णन किया है ।

36 अगरिया/ एलविन, वेरियर; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011; 332p.

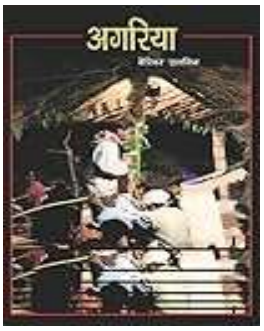

53432

अगरिया' शब्द का अभिप्राय संभवतः आग पर काम करने वाले लोगों से है अथवा आदिवासियों के देवता, अग्यासुर से, जिनका जन्म लौ से हुआ, माना जाता है। अगरिया मध्य भारत के लोहा पिघलाने वाले और लोहारी करने वाले लोग हैं जो अधिकतर मैकाल पहाड़ी क्षेत्र में पाए जाते हैं लेकिन 'अगरिया क्षेत्र' को डिंडोरी से लेकर नेतरहाट तक रेखांकित किया जा सकता है। गोंड, बैगा और अन्य आदिवासियों से मिलते-जुलते रिवाजों और आदतों के कारण अगरिया की जीवन-शैली पर बहुत कम अध्ययन किया गया है। हालाँकि उनके पास अपनी एक विकसित टोटमी सभ्यता है और मिथकों का अकूत भंडार भी, जो उन्हें भौतिक सभ्यता से बचाकर रखता है और उन्हें जीवनीशक्ति देता है। इस पुस्तक के बहाने यह श्रेय प्रमुख नृतत्त्वशास्त्री वेरियर एलविन को जाता है कि उन्होंने अगरिया जीवन और संस्कृति को इसमें अध्ययन का विषय बनाया है। एलविन के ही शब्दों में, मिथक और शिल्प का संगम ही इस अध्ययन का केन्द्रीय विषय है जो अगरिया को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। इसके विभिन्न अध्यायों में अगरिया

इतिहास, संख्या और विस्तार, मिथक, टोना-टोटका, शिल्प, आर्थिक स्थिति और पतन की चर्चा एव विश्लेषण के माध्यम से एक वैविध्यपूर्ण संस्कृति, जिसका अब पतन हो चुका है, की आश्चर्यजनक आंतरिक झाँकी प्रदान की गई है।

37 मध्यभारत के पहाड़ी इलाके/ फोरसिथ, कैप्टन जे. - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 296p.

53433

मध्यभारत के पहाड़ी इलाके पुस्तक मध्यभारत के उन पहाड़ी और मैदानी इलाकों से हमारा साक्षात्कार कराती है जहाँ आदिवासियों की गहरी पैठ रही है । पुस्तक हमें बताती है कि आमतौर पर लोग भारत के 'पहाड़ी' और 'मैदानी इलाकों की ही बात करते हैं। पहाड़ी इलाके से उनका अभिप्राय होता है मात्र हिमालय पर्वत श्रृंखला तथा मैदानी इलाके यानि बाकी देश । पृथ्वी पर बड़े-बड़े पर्वतों, जिन्हें 'पहाड़' से ज्यादा कुछ नहीं कहा जाता, और तथाकथित 'मैदानी' इलाकों के बीच जो बहुत-सी जमीन पड़ी है, उसके लिए कोई निर्दिष्ट भौगोलिक नाम नहीं है । प्रायद्वीप के दक्षिण में नीलगिरि नाम की पर्वत श्रृंखला है, जिसकी ऊँचाई 9000 फीट है, लेकिन भारत से बाहर और भारत में भी इसे ऐसे इलाके के रूप में बहुत कम लोग जानते हैं, जो बीमार लोगों का आश्रय स्थल और विताप (जिसकी छाल से कुनैन बनती है) की नर्सरी है । यह पुस्तक हमें उन स्थानों का भी भ्रमण कराती है जहाँ पहुँचना मनुष्य के लिए लगभग दुष्कर है। इसमें नर्मदा घाटी, महादेव पर्वत, मूल जनजातियों, संत लिंगों का अवतरण, सागौन क्षेत्र, शेर, उच्चतर नर्मदा, साल वन, आदि का भी विस्तार से वर्णन हुआ है। प्रकृति प्रेमियों, पर्यटकों तथा शोधकर्त्ताओं के लिए एक बेहद जरूरी पुस्तक ।

38 राजगोंडो की वंशगाथा/ तिवारी, शिवकुमार- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2012; 480p.

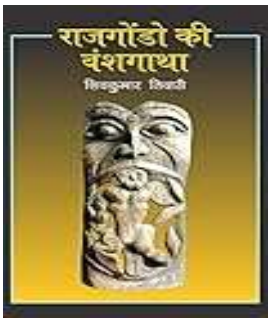

53434

गोंड राजवंश का उदय कलचुरियों या हैहयवंशी राजवंश के अस्त होने पर हुआ। गोंड राजवंश के प्रारम्भिक राजा स्वतंत्र राजा थे। इनका राजकाल के ऐतिहासिक साक्ष्य तब से मिलने प्रारंभ होते हैं जब भारत में लोदीवंश का शासन था। इन प्रारम्भिक स्वतंत्र गोंड राजाओं का जीवन चरित लेखक ने राजकमल प्रकाशन द्वारा वर्ष 2008 में प्रकाशित ग्रन्थ 'चरितानि राजगोंडानाम' में लिपिबद्ध किया था। करद राजाओं का जीवन चरित 'राजगोंडों की वंशगाथा' ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत है । इस वृत्तान्त में गढ़ा कटंगा राज्य की उन सभी पीढ़ियों के राजाओं की जिजीविषा की कहानियाँ हैं, जिन्होंने मुगलकाल के पश्चात मराठा काल तक राज्य किया। ये गाथाएँ मानवीय विश्वास, संवेदना और कर्मठता के अतिरिक्त चार से अधिक शताब्दियों की कालावधि में हुए मानवीय विकास की कथाएं हैं। ये जनजातीय राजे अपने विकासक्रम में निरक्षर, अपढ़ या गंवार नहीं रहे, न ही ये सर्वथा ऐकान्तिक रहे वरन् इनमें से अनेक साहित्यानुरागी, कलाप्रेमी और समकालीन राजनीति के खिलाड़ी भी रहे। ऐसे राजाओं में हृदयशाह का नाम उल्लेखनीय है। ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में राजगोंड कुलभूषण हृदयशाह की दो आगे की और दो पीछे की पीढ़ियों का वर्णन है। इन सभी पीढ़ियों में उनका व्यक्तित्व बेजोड है। यह पुस्तक निश्चित ही न तो इतिहास विषय का ग्रन्थ है और न ही सामाजिक शोध प्रबन्ध, अतः इसकी अकादमिक उपयोगिता को बढ़ाने से सम्बन्धित किसी प्रयास की चर्चा बेमानी है। प्रयास यह रहा है कि कहानियों में ऐतिहासिकता अक्षुण्ण रहे, कल्पना प्रसूत पात्र एवं घटनाएँ यथासम्भव कम से कम हों। प्रत्येक ऐतिहासिक घटना को अलग-अलग इतिहासकार अपने नजरिये से देखते हैं, परन्तु कहानी में घटना को किसी एक ही नजरिये से देखा जा सकता है। यह उसकी सीमा है और आवश्यकता

भी। सामान्य तौर पर कथाओं में वे घटनाएँ चुनी गई हैं जिनसे सर्गों की सूत्रबद्धता कायम रहे परन्तु साथ ही वे सम्बन्धित राजाओं के जीवन की मुख्य घटनाएँ हों।

39 मध्य प्रांत और बरार में आदिवासी समस्याएं/ ग्रिग्सन, डब्ल्यू. वी. - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2018; 576p.

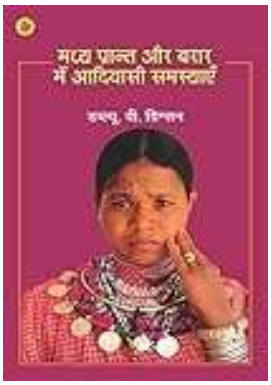

53435

जनजातीय समाज की अवहेलना सदियों से की जाती रही है और मौजूदा समय में भी बरकरार है, जिनकी अनगिनत समस्याओं को दरकिनार कर उनकी जमीनों के मालिकाना हकों को उनसे सरकारी या गैर-सरकारी तरीकों से हड़पा जाता रहा है। उनकी कठिनाइयों और समस्याओं का सूक्ष्म दृष्टि से आंकलन करता यह दस्तावेज हमारे सम्मुख उस जीवन-दृश्य को प्रस्तुत करता है, जो नारकीय है। प्रस्तुत पुस्तक मध्य प्रान्त और बरार में रहनेवाले जनजातीय समाज की विषम समस्याओं से हमें अवगत कराती है कि कैसे समय-समय पर उनकी जमीनों, परम्पराओं, भाषाओं से अलग-थलग करके उन्हें 'निम्न' जाँचा गया है और कैसे उन्हें साहूकारी के पंजों में फँसाकर बँधुआ मजदूरी के लिए बाध्य किया गया है। यहाँ उनकी समस्याओं का एक गम्भीर विश्लेषण है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, पशु-चिकित्सा आदि के नाम पर उन पर जबरन एक 'सिस्टम' थोपा गया जिससे उनकी समस्याएँ कम होने की बजाय और बढ़ी हैं। डब्ल्यू.वी. ग्रिग्सन की अंग्रेजी पुस्तक से अनूदित यह पुस्तक जहाँ एक तरफ जनजातीय समस्याओं पर केन्द्रित हिन्दी पुस्तकों के अभाव को दूर करती है, वहीं दूसरी ओर शोधकर्ताओं और समाज के उत्थान में जुटे कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन भी करती है।

40 यादों का लाल गलियारा:/ जोशी, रामशरण - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2017; 213p.

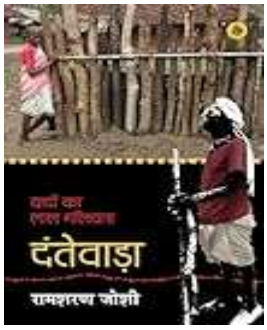

53436

रामशरण जोशी की यह पुस्तक जिन्दा बादों की एक विरल गाथा है। उन जिन्दा यादों की जिनमें हरे-भरे कैनवस पर खून के छींटे दूर-दूर तक सवालों की तरह दिखाई देते हैं। ऐसे सवालों की तरह एक देश के पूरे नक्शे पर जिन्हें राजसत्ता ने अपने आन्तरिक साम्राज्यवाद प्रेरित विकास और विस्तार के लिए कभी सुलझाने का न्यायोचित प्रयास नहीं किया, बल्कि 'ग्रीन हण्ट' और 'सलवा जुडुम' के नाम पर राह में आड़े आनेवाले 'लोग और लोक' दोनों को ही अपराधी बना दिया और यातनाओं को ऐसे दुःस्वप्न में बदला कि दुनिया भर के इतिहासों के साक्ष्य के बावजूद छत्तीसगढ़, झारखंड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान आदि के वनांचलों का भविष्य अपने आगमन से पहले लहकता रहा, 'लाल गलियारा' बनता रहा। यह पुस्तक राजसत्ता और वैश्विक नव उपनिवेशवादी चरित्र से न सिर्फ नकाब हटाती है बल्कि आदिवासियों यानी हाशिए के संघर्ष का वैज्ञानिक विश्लेषण भी करती है। रेखांकित करती है कि 'हाशिए के जन का अपराध केवल यही रहा है कि प्रकृति ने उन्हें सोना, चाँदी, लोहा, बॉक्साइट, मँगनीज, ताँबा, एल्यूमिनियम, कोयला, तेल, हीरे-जवाहरात, अनन्त जल-जंगल-जमीन का स्वाभाविक स्वामी बना दिया; समता, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता और न्यायपूर्ण जीवन की संरचना से समृद्ध किया। इसीलिए इस जन ने अन्य की व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं किया। यदि अन्यों ने किया तो इस जन ने उसका प्रतिरोध भी ज़रूर किया। इस आत्म-रक्षात्मक प्रतिरोध का मूल्य इस जन को अपने असंख्य व अवर्णनीय दैहिक बलिदान, विस्थापन, पलायन, परतंत्रता, शोषण और उत्पीड़न के रूप में अदा करना पड़ा। अपने काल परिप्रेक्ष्य में 'यादों

का लाल गलियारा दंतेवाड़ा' पुस्तक बस्तर, जसपुर, पलामू, चंद्रपुर, गढ़चिरौली, काडी, उदयपुर, बैलाडीला अबूझमाड़ देवासहित कई वनांचलों के ज़मीनी अध्ययन और अनुभवों के विस्फोटक अन्तर्विरोधों की इबारत लिखती है। लेखक ने इन क्षेत्रों में अपने पड़ावों की ज़िन्दा यादों की ज़मीन पर अवलोकन- पुनरावलोकन से जिस विवेक और दृष्टि का परिचय दिया है, उससे नई राह को एक नई दिशा की प्रतीति होती है। यह पुस्तक हाशिए का विमर्श ही नहीं, हाशिए का विकल्प- पाठ भी प्रस्तुत करती है।

41 आधुनिक भारत में जाति/ श्रीनिवास, एम. एन. - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020; 180p.

53437

अथक अध्ययन और शोध के परिणामस्वरूप एम. एन. श्रीनिवास के निबन्ध आकार ग्रहण करते हैं। भारतीय समाज की नब्ज पर उनकी पकड़ गहरी और मजबूत है। उनके लेखन में इतिहास और बुद्धि का बोझिलपन नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत निबन्धों में समाजशास्त्र व नृतत्त्वशास्त्र विषयक समस्याओं के व्यावहारिक पक्षों पर रोशनी डाली गई है। लेखक समस्याओं की तह में जाना पसन्द करता है और उसके विश्लेषण का आधार भी यही है। हर समाज की अपनी मौलिक संरचना होती है। जिस संरचना को उस समाज के लोग देखते हैं, वह वैसी नहीं होती जैसी समाजशास्त्री शोध और अनुमानों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। भारतीय समाजशास्त्रियों ने जाति-व्यवस्था के जटिल तथ्यों को 'वर्ग' की मर्यादाओं में समझने की भूल की और जिसके चलते सामाजिक संरचना का अध्ययन सतही हो गया। गत सौ-डेढ़ सौ वर्षों के दौरान जाति-व्यवस्था का असर कई नए-नए कार्यक्षेत्रों में विस्तृत हुआ है और उसकी ऐतिहासिक व मौजूदा तंत्र की नितान्त नए दृष्टिकोण से विश्लेषण करने की माँग एम. एन. श्रीनिवास करते हैं। हमारे यहाँ जाति-व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी हैं कि बिना इसके सापेक्ष परिकलन किए मूल समस्याओं की बात करना बेमानी है। एम.एन. श्रीनिवास का मानना है कि समाज- वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए राजनीतिक स्तर के जातिवाद तथा सामाजिक एवं कर्मकांडी स्तर के जातिवाद में फर्क करना जरूरी है।

42 यादों से रचा गाँव/ श्रीनिवास, एम. एन. - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2004; 206p.

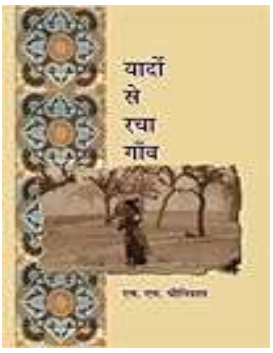

53438

यादों से रचा गाँव अतीत के दुर्घटनाग्रस्त ब्यौरों को सामने लाने के रचनात्मक संकल्प का परिणाम है। एक हादसे में सारे कागजात जलकर राख हो जाने के बाद एम.एन. श्रीनिवास ने इस पुस्तक में पूरी तरह अपनी यादों के सहारे अपने क्षेत्रकार्य के अनुभवों की पुनर्रचना की है। प्रस्तुत पुस्तक में यूँ तो दक्षिण भारत के एक बहुजातीय ग्राम का नृतत्त्वशास्त्रीय अध्ययन दिया गया है, लेकिन एक बदलते ग्राम का प्रौद्योगिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और अंतर्जातीय संबंधों का जिस प्रकार विवेचन किया गया है वह पूरे भारत के गाँवों की स्थिति को दर्शाता है। यादों से रचा गाँव में स्त्री-पुरुष संबंधों, धर्म, परिवार, और कृषि से संबंधित मामलों का भी व्यापक विश्लेषण है । वस्तुतः प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसी कृति है जिसे मूल आँकड़ों के समुद्र में गोता लगाकर गाँव की अपनी शब्दावली में रचा गया है। श्रीनिवास ने इस पुस्तक में बहुजातीय भारतीय समुदाय के क्षेत्र - अध्ययन

का जिस ढंग से वैज्ञानिक विश्लेषण किया है वह न केवल मानवशास्त्रियों, बल्कि दूसरे सामान्य पाठकों के लिए भी उपयोगी है। इस कृति का प्रमुख आकर्षण इसकी रचनात्मक शैली है।

43 भारत के गाँव/ श्रीनिवास, एम. एन. - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2023; 179p.

53439

भारत, ब्रिटेन और अमेरिका के प्रमुख समाजशास्त्रियों द्वारा लिखे गए निबन्धों के इस संग्रह में भारत के चुनिन्दा गाँवों और उनमें हो रहे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के विवरण प्रस्तुत हैं। हर निबन्ध एक क्षेत्र के एक ही गाँव या गाँवों के समूह के गहन अध्ययन का परिणाम है। यह निबन्ध एक विस्तृत क्षेत्र का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं, उत्तर में हिमाचल प्रदेश से लेकर दक्षिण में तंजौर तक और पश्चिम में राजस्थान से लेकर पूर्व में बंगाल तक । सर्वेक्षित गाँव सामुदायिक जीवन के विविध - प्रारूप प्रस्तुत करते हैं, लेकिन इस विविधता में ही कहीं उस एकता का सूत्र गुँथा है जो भारतीय ग्रामीण दृश्य का लक्षण है। गहरी धँसी जाति व्यवस्था और गाँव की एकता का प्रश्न हाल के वर्षों में बढ़े औद्योगीकरण और शहरीकरण के ग्रामीण विकास के लिए सरकारी योजनाओं और शिक्षा के प्रभाव कुछ ऐसे पक्ष हैं जिसकी विद्वत्तापूर्ण पड़ताल हुई है। आज भी, भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी 80 प्रतिशत जनसंख्या उसके पाँच लाख गाँवों में रहती है, और उन्हें बदल पाने के लिए उनके जीवन की स्थितियों की जानकारी जरूरी है। भारत के गाँव जिज्ञासु-सामान्य जन और ग्रामीण भारत को जाननेवाले विशेषज्ञों के लिए ग्रामीण भारत का परिचय उपलब्ध करवाती

44 हिंदू सभ्यता/ मुखर्जी, राधामुकुद - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016; 336p.

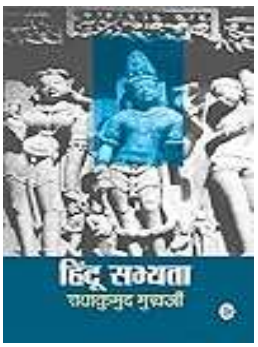

53440

हिंदू सभ्यता प्रख्यात इतिहासकार प्रो. राधाकुमुद मुखर्जी की सर्वमान्य अंग्रेजी पुस्तक हिंदू सविलिजेशन का अनुवाद है। अनुवाद किया है इतिहास और पुरातत्त्व के सुप्रतिष्ठ विद्वान डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने । इसलिए अनूदित रूप में भी यह कृति अपने विषय की अत्यंत प्रामाणिक पुस्तकों में सर्वोपरि है। हिंदू सभ्यता के आदि स्वरूप के बारे में प्रो. मुखर्जी का यह शोधाध्ययन ऐतिहासिक तिथिक्रम से परे प्रागैतिहासिक, ऋग्वैदिक, उत्तरवैदिक और वेदोत्तर काल से लेकर इतिहास के सुनिश्चित तिथिक्रम के पहले दो सौ पचहत्तर वर्षों (ई. पू. 650-325) पर केंद्रित है। इसके लिए उन्होंने ऋग्वेदीय भारतीय मानव के उपलब्ध भौतिक अवशेषों तथा उसके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की उत्खनित सामग्री का सप्रमाण उपयोग किया है। वस्तुतः प्राचीन सभ्यता या इतिहास विषयक प्रामाणिक लेखन उपलब्ध अलिखित साक्ष्यों के बिना संभव ही नहीं है। यह मानते हुए भी कि भारत में साहित्य की रचना लिपि से पहले हुई और वह दीर्घकाल तक कंठ- परंपरा में जीवित रहकर 'श्रुति' कहलाया जाता रहा, उसे भारतीय इतिहास की प्राचीनतम साक्ष्य-सामग्री नहीं माना जा सकता। यों भी यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि लिपि, लेखन कला, शिक्षा या साहित्य मानव-जीवन में तभी आ पाए, जबकि सभ्यता ने अनेक शताब्दियों की यात्रा तय कर ली। इसलिए प्रागैतिहासिक युग के औजारों, हथियारों, बर्तनों और आवासगृहों तथा वैदिक और उत्तरवैदिक युग के वास्तु, शिल्प, चित्र, शिलालेख, ताम्रपट्ट और सिक्कों आदि वस्तुओं को

ही अकाट्य ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। कहना न होगा कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र में अध्ययनरत शोध छात्रों के लिए अत्यंत उपयोगी इस कृति के निष्कर्ष इन्हीं साक्ष्यों पर आधारित हैं।

45 सिंधु सभ्यता/ हबीब, इरफान; - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 140p.

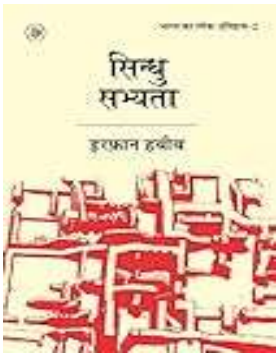

53441

भारत का लोक इतिहास' श्रृंखला की यह दूसरी पुस्तक सिन्धु सभ्यता के बारे में है। इसे इस श्रृंखला की पहली पुस्तक 'प्रागैतिहास' की अगली कड़ी के रूप में भी पढ़ा जा सकता है । सिन्धु सभ्यता के और विस्तृत विवरण के अलावा इसमें अन्य समकालीन और उसके बाद की संस्कृतियों का सर्वेक्षण भी किया गया है। साथ ही भारत के मुख्य भाषा परिवारों के उद्भव पर विमर्श भी इसमें शामिल है। सिन्धु घाटी और सीमावर्ती क्षेत्रों में आरम्भिक कांस्य युग और उसके सांस्कृतिक पहलू तथा सिन्धु सभ्यता की व्यापकता, जनसंख्या, कृषि, हस्तशिल्प, व्यापार, क़स्बों और शहरों की बनावट के साथ इसमें जनता, समाज और राज्यसत्ता आदि का भी प्रमाण-आधारित विश्लेषण किया गया है। तालिकाओं, चित्रों और विस्तृत सन्दर्भ ग्रन्थ सूचियों के साथ यह पुस्तक श्रृंखला की अन्य पुस्तकों की ही तरह संग्रहणीय और पठनीय सिद्ध होगी।

46 प्रागैतिहास/ हबीब, इरफान - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 94p.

53442

प्रागैतिहास' पुस्तक में उस युग की कहानी है जिस पर लिखित दस्तावेजों से कोई रोशनी नहीं पड़ती। यह पुस्तक 'भारत का लोक इतिहास' (पीपुल्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया) नामक एक बड़ी परियोजना का हिस्सा है, लेकिन इसे एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में भी देखा जा सकता है। तीन अध्यायों की इस पुस्तक के पहले अध्याय में भारत की भूगर्भीय संरचनाओं, मौसम में परिवर्तन तथा प्राकृतिक पर्यावरण (वनस्पति और प्राणी जगत) की उस हद तक चर्चा की गई हैं, जहाँ तक हमारे प्रागैतिहास और इतिहास को समझने के लिए प्रासंगिक है। दूसरे अध्याय में मानव जाति की कहानी को पूरी दुनिया के सन्दर्भ में और फिर उसके अन्दर भारत के सन्दर्भ में पेश किया गया है। उसके औजार समूहों में परिवर्तन को औजार निर्माता लोगों के प्रकार के साथ जोड़कर देखा गया है। तीसरा अध्याय मूल रूप से खेती के विकास और उसके साथ-साथ शोषणकारी सम्बन्धों की शुरुआत का वर्णन करता है। पुस्तक में इस बात की कोशिश की गई है कि ताजातरीन सूचनाएँ, उपलब्ध प्रामाणिक ग्रन्थों और पत्रिकाओं से ही उद्धृत की जाएँ। यह भी कोशिश की गई है कि चीजों को 'लोक लुभावन' तथा आडम्बरपूर्ण बनाए बगैर शैली को सरलतम रखा जाए। तकनीकी शब्दों के प्रयोग को न्यूनतम रखा गया है और यह भी प्रयास किया गया है कि प्रत्येक तकनीकी शब्द का प्रयोग करते समय वहीं पर उसकी एक परिभाषा प्रस्तुत कर दी जाए। प्रत्येक अध्याय के अन्त में एक पुस्तक सूची टिप्पणी भी दी गई है जहाँ उस विषय पर और अधिक सूचना देनेवाली महत्त्वपूर्ण पुस्तकों और लेखों को संक्षिप्त टिप्पणियों के साथ दर्ज किया गया है।

47 शूद्रों का प्राचीन इतिहास/ शर्मा, रामशरण - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2023; 338p.

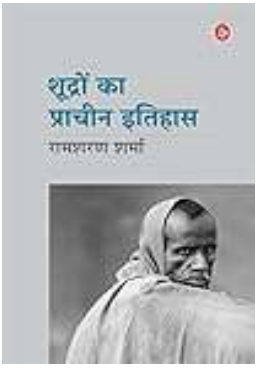

53443

शूद्रों का प्राचीन इतिहास प्रख्यात इतिहासकार प्रो. रामशरण शर्मा की अत्यन्त मूल्यवान कृति है। शूद्रों की स्थिति को लेकर इससे पूर्व जो कार्य हुआ है, उसमें तटस्थ और तलस्पर्शी दृष्टि का प्रायः अभाव दिखाई देता है। ऐसे कार्य में कहीं 'शूद्र' के दार्शनिक आधार की व्याख्या-भर मिलती है, तो कहीं धर्मसूत्रों में शूद्रों के स्थान की; कहीं शूद्रों के गुलाम नहीं होने को सिद्ध किया गया है, तो कहीं उनके उच्चवर्गीय होने को । कुछ अध्ययनों में प्राचीन भारत के श्रमशील वर्ग से सम्बद्ध सूचनाओं का संकलन-भर हुआ है। दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसे अध्ययनों में विभिन्न परिस्थितियों में पैदा हुई उन पेचीदगियों की प्राय: उपेक्षा कर दी गई है, जिनके चलते शूद्र नामक श्रमजीवी वर्ग का निर्माण हुआ। कहना न होगा कि यह कृति उक्त तमाम एकांगिकताओं अथवा प्राचीन भारतीय जीवन के पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने की प्रकृति से मुक्त है। लेखक के शब्दों में कहें तो "प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य प्राचीन भारत में शूद्रों की स्थिति का विस्तृत विवेचन करना मात्र नहीं, बल्कि उसके ऐसे आधुनिक विवरणों का मूल्यांकन करना भी है जो या तो अपर्याप्त आँकड़ों के आधार पर अथवा सुधारवादी या सुधारविरोधी भावनाओं से प्रेरित होकर लिखे गए हैं।" संक्षेप में, प्रो. शर्मा की यह कृति ऋग्वैदिक काल से लेकर करीब 500 ई. तक हुए शूद्रों के विकास को सुसम्बद्ध तरीके से सामने रखती है। शूद्र चूँकि श्रमिक वर्ग के थे, अतः यहाँ उनकी आर्थिक स्थिति और उच्च वर्ग के साथ उनके समाजार्थिक रिश्तों के स्वरूप की पड़ताल के साथ-साथ दासों और अछूतों की उत्पत्ति एवं स्थिति की भी विस्तार से चर्चा की गई है।

48 ओलिम्पिक खेलों को जानें/ पाण्डेय, कनिष्क- राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 110p.

53444

ओलम्पिक खेलों को जानें- इस पुस्तक को आप ओलम्पिक खेलों की प्राथमिक मार्गदर्शिका कह सकते हैं। इसमें वह सब जानकारी दी गई है जो ओलम्पिक में भाग लेने के इच्छुक किसी भी खिलाड़ी को सबसे पहले चाहिए होती है। ये कौन से खेल हैं जो ओलंपिक में खेले जाते हैं, इससे लेकर, कौन-सा खेल कैसे खेला जाता है, उसके नियम क्या होते हैं, ओलम्पिक में उस खेल को कब शामिल किया गया और अब तक किस- किस खिलाड़ी ने उसमें पदक जीते-यह सब आप इस पुस्तक से जान सकते हैं। भारत जैसे देश में जहाँ युवाओं की इतनी बड़ी संख्या मौजूद है, खेलों के प्रति जैसी भावना और समर्पण होना चाहिए था, वैसा आमतौर पर देखने को नहीं मिलता। सौ साल के अपने ओलम्पिक इतिहास में हमारी उपलब्धियाँ भी बहुत ज्यादा नहीं हैं। योग्य खिलाड़ियों को विश्व स्तर पर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने के लिए जिस तरह का वातावरण और प्रोत्साहन मिलना चाहिए, वैसा हमारे युवाओं को आमतौर पर नहीं मिल पाता। सामाजिक-आर्थिक वजहों के साथ इसका एक कारण आधारभूत जानकारी का अभाव भी है। यह पुस्तक उसी कमी को पूरा करने की एक कोशिश है। ओलम्पिक और अन्य खेलों के इतिहास तथा तकनीकी पक्ष के गहरे जानकर लेखक ने इस पुस्तक को सरल भाषा और तथ्यात्मक प्रामाणिकता के साथ लिखा है। हर स्तर के पाठक के लिए बोधगम्य और उपयोगी यह पुस्तक खासतौर पर ओलम्पिक खेलों में रुचि रखनेवाले भावी खिलाड़ियों, खेल प्रेमियों और ऐसे पाठकों के लिए

उपादेय साबित होगी जो खेल संस्कृति और खेल भावना को देश-दुनिया की आंतरिक सम्पन्नता के लिए जरूरी मानते हैं

49 पद्मावत: मानुस पेम भएउ बैकुंठि/ अग्रवाल, पुरुषोत्तम - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 214p.

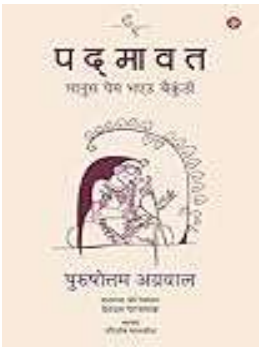

53445

एक थी रानी पद्मिनी जिसे लोक-मन की कल्पनाओं ने गढ़ा और इतिहास में स्थापित कर दिया। राजपूताना के सम्मान और शान के रूप में लोग उसकी कथा कहते- सुनते रहे एक थी 'पद्मावत' जिसे मलिक मुहम्मद जायसी ने अवधी में लिखा, और जिसमें उन्होंने स्त्री, प्रकृति और प्रेम के सौन्दर्य की एक अमर छवि गढ़ी छात्र उसके अंशों को पाठ्यक्रम में पढ़ते और कोर्स में लगी हर सामग्री की तरह रट-रट कर भूल जाते । फिर एक फ़िल्म बनी, जिससे पता चला कि लोग न पद्मिनी को जानते हैं, न 'पद्मावत' को; कि वे एक मिथक को सच की तरह पढ़ रहे हैं और जो चीज़ वास्तव में पढ़ने योग्य है, उसे पढ़ ही नहीं रहे। इसलिए यह किताब नवोन्मेषकारी विचार और सृजनात्मक आलोचकीय मेधा के धनी प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल अपनी इस किताब में 'पद्मावत' को भारत के आरम्भिक आधुनिक काल की रचना कहते हैं जिसके केन्द्र में एक स्त्री है, एक ऐसा काव्य जिसमें चरित्रों का मूल्यांकन उनके व्यक्तिगत कार्यों और गुणों के अनुसार होता है, उनकी धार्मिक, जातिगत या सामाजिक पहचान से नहीं। यह एक प्रेम कविता है। श्रेष्ठ कविता जो स्त्रीत्व का जश्न मनाती है और श्रृंगार रस जिसका महत्त्वपूर्ण अंग है। 'पद्मावत' और उसकी इस मीमांसा से हम जान पाते हैं कि जायसी की संवेदना में इस्लामी परम्परा के ज्ञान और सूफी आस्था के साथ-साथ हिन्दू पुराण कथाओं, मान्यताओं और अवध के लोकजीवन की गहरी जानकारी और लगाव एक साथ अनुस्यूत है। पुरुषोत्तम जी खुद इस किताब को 'जायसी की कविता के नशे में बरसों से डूबे एक पाठक द्वारा अपनी एक प्रिय रचना का पाठ कहते हैं जो स्पष्ट है, सिर्फ़ आलोचना नहीं है, भारत की अपनी, उपनिवेश-पूर्व, आधुनिकता की सौन्दर्य चेतना और काव्यबोध से सम्पन्न एक क्लासिक कृति का रचनात्मक अवगाहन है।

50 रामचन्द्र शुक्ल/ मलयज, - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 134p.

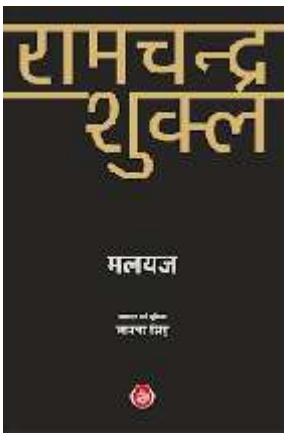

53446

विस्मरण के इस हाहाकारी उत्सवी दौर में भुला दिए गए विलक्षण कवि-आलोचक मलयज और उनकी पुस्तक 'रामचन्द्र शुक्ल' की पुनर्प्रस्तुति का साहित्यिक और अकादमिक महत्त्व निर्विवाद है। मलयज की आलोचना पद्धति के कायल सब लोग हैं, जिन्होंने उनका लिखा कुछ भी पढ़ा है। भौतिक रूप से मिले छोटे से जीवन में मलयज ने सृजन के कई मानक स्थापित किए। यह पुस्तक' भी अपने संक्षिप्त कलेवर में ही एक प्रतिमान की तरह है । मलयज ने एक अपूर्व आलोचक-चिन्तक के रूप में रामचन्द्र शुक्ल का जिस प्रकार मूल्यांकन किया है, उसका सानी कोई दूसरा नहीं है। यह अकारण नहीं है कि इस पुस्तक को सम्पादित करने वाले सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने अपनी भूमिका का शीर्षक ही दिया था- मलयज की संघर्ष मीमांसा। मलयज रामचन्द्र शुक्ल की 'रस-मीमांसा' के बड़े प्रशंसक थे। उनकी अन्तर्दृष्टि मलयज की अन्तर्दृष्टि में उसी प्रकार घुली है जिस प्रकार दाल में नमक घुल जाता है। लेकिन यहाँ यह याद रखना ज़रूरी है कि दाल में नमक का बहुत

महत्त्व है लेकिन वह पूरी दाल नहीं है। वह उसका एक घटक भर है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रामचन्द्र शुक्ल के दाय को स्वीकार करते हुए मलयज ने नया बहुत कुछ जोड़ा और हिन्दी आलोचना को गहरी विश्वसनीयता भी दी। हिन्दी के युवा आलोचकों के लिए मलयज की विश्लेषण पद्धति और भाषा में सीखने के लिए बहुत कुछ है। उनकी आलोचना एक पाठशाला की तरह है।

51 प्रेमचन्द:/ नरवणे, विश्वनाथ एस. - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022; 303p.

53447

महान कथाकार प्रेमचन्द के जीवन और कृतित्व पर केन्द्रित यह पुस्तक प्रेमचन्द पर लिखी अन्य पुस्तकों से अलग इसलिए है कि इसे गहरे व्यक्तिगत लगाव और आलोचकीय तटस्थता, दोनों को साधते हुए लिखा गया है। मूलत: अंग्रेजी में लिखित इस पुस्तक का मूल उद्देश्य तो प्रेमचन्द के सम्पूर्ण का परिचय देना है, लेकिन उनके व्यक्तित्व, रचनाधर्मिता और उनके समय का सम्यक विश्लेषण भी इसमें होता चला है। दर्शनशास्त्र और प्राचीन संस्कृत साहित्य का गम्भीर पाठक होने के नाते प्रो. नरवणे ने इसमें प्रेमचन्द के पात्रों के विकास और समस्याओं की पड़ताल करने के साथ व्यक्ति के रूप में प्रेमचन्द का मूल्यांकन भी किया है। पुस्तक के पहले चार अध्यायों के केन्द्र में प्रेमचन्द का जीवन है जिसकी पृष्ठभूमि में भारतीय इतिहास का सर्वाधिक उत्तेजक, परिवर्तनशील और आन्दोलनकारी समय था। इसलिए बावजूद इसके कि स्वयं प्रेमचन्द का जीवन उतना घटना प्रधान नहीं है, उस समय का विवरण विशेष तौर पर पठनीय है। साथ ही यह भी कि प्रेमचन्द उस समय को न सिर्फ़ अपनी रचनात्मकता में अंकित कर रहे थे, बल्कि उसमें अपनी पक्षधरता को भी स्पष्ट स्वर में अभिव्यक्त कर रहे थे। इसके बाद के अध्यायों में क्रमशः उनके उपन्यासों, नाटक व अन्य सामग्री तथा कहानियों पर विस्तृत चर्चा की गई हैं। उनके लगभग सभी उपन्यासों और प्रमुख कहानियों पर केन्द्रित इन व्याख्याओं में कथा-सूत्र के साथ-साथ उनकी रचनात्मक गुणवत्ता को भी रेखांकित किया गया है। अन्तिम अध्याय में लेखक ने प्रेमचन्द की कृतियों और उनके व्यक्तित्व को लेकर अपना निजी मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। लेखक को उनकी रचनात्मकता की जो सीमा दिखाई पड़ी है उसको भी उन्होंने तटस्थतापूर्वक शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। प्रेमचन्द के अध्येताओं को निश्चय ही यह पुस्तक उपादेय लगेगी।

52 ग्रामीण क्षेत्रों में मानवशास्त्रीय अध्ययन/ जोधका, सुरिंदर एस (सम्पादक) - वाणी प्रकाशन और इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, दिल्ली, 2019; 232p.

53448

भारतीय ग्राम अध्ययन श्रृंखला की इस पहले भाग में सुरिन्दर एस. जोधका की प्रस्तावना के अतिरिक्त कुल बारह अध्याय हैं। असल में, इस श्रृंखला के सभी भागों में सम्मिलित शोध-आलेखों की बेहतरीन समझ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यह ध्यान रखा जाये कि ये किस वर्ष प्रकाशित हुए थे। इस श्रृंखला के इस पहले भाग के सन्दर्भ में इस बारे में विशेष रूप से जागरूक रहने की आवश्यकता है इस भाग में सम्मिलित सभी आलेख विभिन्न मानवशास्त्रियों द्वारा भारत के गाँवों के गम्भीर अध्ययन को प्रस्तुत करते हैं। पहले अध्याय में एम. एन. श्रीनिवास ने मैसूर के एक गाँव रामपुरा की सामाजिक संरचना और यहाँ के लोगों के जीवन के विविध आयामों का चित्र उकेरा है। दूसरे अध्याय में एरिक जे.

मिलर ने केरल के एक गाँव की संरचना का अत्यन्त रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। डब्ल्यू. एच. नेवेल ने तीसरे अध्याय में एक हिमालय की गोद में बसे एक गाँव का मानवशास्त्रीय अध्ययन पेश किया है। अध्याय चार में ज्योतिर्मयी शर्मा ने बंगाल के एक गाँव का मानवशास्त्रीय वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंने जिस गाँव का विवरण दिया है, वह हुगली जिले के हावड़ा रेलवे स्टेशन से 30 मील की दूरी पर है। मेरियन डब्ल्यू. स्मिथ ने पंजाब के एक गाँव की सामाजिक संरचना का अध्ययन प्रस्तुत किया है। एस. सी. दुबे ने दक्कन में हैदराबाद राज्य के अदीलाबाद जिले के एक मिश्रित गाँव देवारा का अध्ययन प्रस्तुत किया है, जहाँ मुख्य रूप से आदिवासियों का प्रभुत्व है। सातवें अध्याय में एड्रियान सी. मेयर ने मालवा के एक गाँव में होने वाले बदलावों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। आंद्रे येते ने तंजौर जिले के श्रीपुरम नामक गाँव और वहाँ के जीवन के विविध आयामों का अध्ययन किया है। वी. नाथ द्वारा लिखित आलेख में राजस्थान के एक बदलते गाँव की तस्वीर प्रस्तुत की गयी है। एम. एन. श्रीनिवास और ए. एम. शाह ने भारतीय गाँवों के आत्मनिर्भरता के मिथक की गहराई से पड़ताल की है। बर्नार्ड एस. कोहेन ने एक उत्तर भारतीय गाँव में चमार परिवार में हो रहे संरचनात्मक परिवर्तनों का अध्ययन किया है । एम.एस.ए. राव ने अपने आलेख में दिल्ली के एक गाँव में शहरीकरण के कारण होने वाले सामाजिक परिवर्तनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन पेश किया है।

53 ग्रामीण विकास: परिप्रेक्ष्य, नीतियाँ और कार्यक्रम/ जोधका, सुरिंदर एस (सम्पादक) - वाणी प्रकाशन और इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, दिल्ली, 2019; 294p.

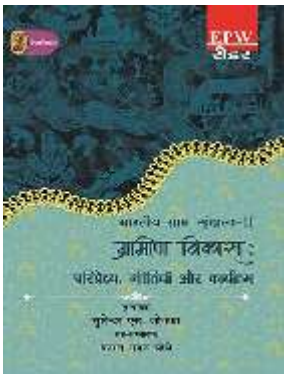

53449

ग्रामीण भारत के जीवन के विविध आयामों से सम्बन्धित विद्वत्तापूर्ण और अनुसन्धानपरक आलेखों से बनी यह पुस्तक अपने आप में अनूठी है। इसका एक स्पष्ट कारण तो यह है कि इसमें भारत के गाँवों के जीवन के विविध आयामों से सम्बन्धित आलेख सम्मिलित हैं, और दूसरा कारण यह है कि यह पुस्तक स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के भारत के ग्रामीण जीवन में गत्यात्मक परिवर्तनशीलता की तस्वीर प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक के अध्यायों को पढ़ते हुए हमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के आरम्भिक दशकों में भारतीय गाँवों की स्थिति, जातियों की भूमिका और उनमें हो रहे परिवर्तन के बारे में जानकारी मिलती है। बाद के अध्यायों में साठ सत्तर और अस्सी के दशक में राज्य द्वारा निर्मित नीतियों के कारण ग्रामीण जीवन में होने वाले बदलावों का अनुभवसिद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह, कई अन्य अध्याय उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर में भारतीय गाँवों की दशा और दिशा को प्रदर्शित करते हैं। इस पुस्तक के संकलित आलेखों में सामाजिक एवं लैंगिक संरचनात्मक परिवर्तन, सामुदायिक विकास, ग्रामीण विद्युतीकरण, हरित क्रान्ति, ग्रामीण राजनीति जैसे पहलुओं से भारतीय ग्रामीण जीवन के विविध आयामों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

54 ग्रामीण परिवेश का बदलता जीवन: सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिपेक्ष्य/ जोधका, सुरिंदर एस (सम्पादक) - वाणी प्रकाशन और इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, दिल्ली, 2019; 383p.

53450

ग्रामीण भारत के जीवन के विविध आयामों से सम्बन्धित विद्वत्तापूर्ण और अनुसन्धानपरक आलेखों से बनी यह पुस्तक अपने आप में अनूठी है। इसका एक स्पष्ट कारण तो यह है कि इसमें भारत के गाँवों के जीवन के विविध आयामों से सम्बन्धित आलेख सम्मिलित हैं, और दूसरा कारण यह है कि यह पुस्तक स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के भारत के ग्रामीण जीवन में गत्यात्मक परिवर्तनशीलता की तस्वीर प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक के अध्यायों को पढ़ते हुए हमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के आरम्भिक दशकों में भारतीय गाँवों की स्थिति, जातियों की भूमिका और उनमें हो रहे परिवर्तन के बारे में जानकारी मिलती है। बाद के अध्यायों में साठ सत्तर और अस्सी के दशक में राज्य द्वारा निर्मित नीतियों के कारण ग्रामीण जीवन में होने वाले बदलावों का अनुभवसिद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह कई अन्य अध्याय उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर में भारतीय गाँवों की दशा और दिशा को प्रदर्शित करते हैं। इस पुस्तक के संकलित आलेखों में ग्रामीण परिवेश का आधुनिक और शैक्षणिक दृष्टिकोण, ग्रामीण स्त्रियों को आकांक्षाएँ एवं पुरुष संस्कृति, हाशिये की राजनीति एवं कृषि सम्बन्धी परिवर्तनों का पुनरावलोकन किया गया है।

55 बौद्धिक सम्पदा संरक्षण और टिकाऊ विकास/ कुलेट, फिलिप - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008; 251p.

53451

सामाजिक कार्यकर्ताओं, जनोन्मुख बुद्धिजीवियों और समतामूलक समाज की रचना में दिलचस्पी रखने वाले लोगों के लिए बेहद उपयोगी इस पुस्तक में बौद्धिक सम्पदा संरक्षण और टिकाऊ विकास की अवधारणा के भूमंडलीय कानूनी पहलुओं पर रोशनी डाली गई है। बौद्धिक सम्पदा संरक्षण एक ऐसा विषय है जिस पर साहित्य का लगभग अभाव ही है, बावजूद इसके कि यह प्रश्न हमारे रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित करने की स्थिति में आ चुका है। भूमंडलीकरण की दौड़ में पूरी तरह शामिल भारत ही नहीं अन्य विकासशील देशों की सरकारों ने भी महसूस कर लिया है कि बौद्धिक सम्पदा अधिकार अंगीकार करने के बावजूद उन्हें कुछ विशेष उपाय अपनाने होंगे ताकि उनके जैसे नव-स्वाधीन देशों के हितों की रक्षा की जा सके विकासशील देशों का हित इसी में है कि वे टिकाऊ विकास की अवधारणा की रोशनी में बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को देखें। ट्रिप्स समझौते के कारण हुए बौद्धिक अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीयकरण की तेज प्रक्रिया ने भी विकासशील देशों को इन अधिकारों के प्रति जागरूक किया है। ट्रिप्स द्वारा आरोपित न्यूनतम मानकों के कारण अलग-अलग जरूरतों का सवाल सामने आ गया है। इसके कारण बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से संबंधित विमर्श में एक नया आयाम पैदा हो गया है जिसके विश्लेषण की जरूरत से कोई इनकार नहीं कर सकता ।

56 भारतीय ग्राम/ दुबे, श्यामाचरण - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2017; 240p.

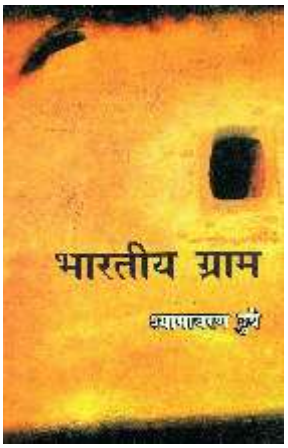

53452

भारत के ग्राम समुदायों में तेजी से सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं। सन 1947 में स्वतंत्रता हैं मिलने के बाद से आधुनिकीकरण की दिशा में देश ने महत्त्वपूर्ण चरण उठाए । बहु-उद्देशीय नदी घाटी योजनाएँ, कृषि को यंत्रीकृत करने की योजनाएँ और नये उद्योगों को विकसित करने के कार्यक्रम सम्बन्धी कई राष्ट्रीय योजनाएँ कार्यान्वित हुई जिन्होंने कुछ ही दशाब्दियों में ग्रामीण भारत का स्वरूप बदल दिया। भारतीय ग्राम समुदायों के परम्परागत जीवन और उनमें दीख पड़ने वाली सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियों का अध्ययन न केवल समाज के अध्येताओं के लिए, वरन् योजनाकारों, प्रशासकों और उन सबके लिए जिनकी मानव कल्याण और सामाजिक परिवर्तन में रुचि है, महत्त्व का है। यह पुस्तक एक भारतीय ग्राम की सामाजिक संरचना और जीवन-विधि का वर्णन प्रस्तुत करती है। भारत के ग्राम-जीवन के प्रथम समुदाय-अध्ययनों में से एक, यह अध्ययन विख्यात सामाजिक मानव-वैज्ञानिक प्रोफेसर श्यामाचरण दुबे द्वारा एक शोध दल की सहायता से सम्पन्न किया गया। यह विस्तार से जटिल जाति-व्यवस्था का वर्णन प्रस्तुत करती है और यह दर्शाती है कि किस प्रकार विभिन्न जातियाँ ग्राम समुदाय के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन में एक-दूसरे से जुड़ी हैं। इसमें लोगों के बदलते हुए विचारों और अभिवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है और सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की प्रवृत्तियों का भी गूढ़ परीक्षण किया गया है।

57 विकास का समाजशास्त्र/ दुबे, श्यामाचरण - लिटिल बुक्स, दिल्ली, 2012; 183p.

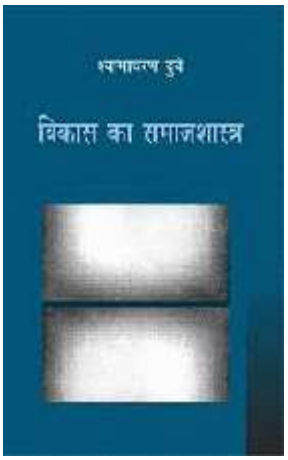

53453

पिछले कुछ वर्षों से विकास और आधुनिकीकरण की हवा दुनिया भर में अंधड़ का रूप धारण किए हुए है। उससे उड़ते हुई गर्दी-गुवार आज आँखों तक ही नहीं, दिलो-दिमाग तक भी जा पहुँची है। ऐसे में जो मनुष्योचित और समाज के हित में है, उसे देखने, महसूसने और उस पर सोचने का जैसे अवसर ही नहीं है। मनुष्य के इतिहास में यह एक नया संकट है, जिसे अपनी मूल्यहंता विकास प्रक्रिया के फेर में उसी ने पैदा किया है। यह स्थिति अशुभ है और इसे बदला जाना चाहिए। लेकिन वर्तमान में इस बदलाव को कैसे सम्भव किया जा सकता है या उसके कौन-से आधारभूत मूल्य हो सकते हैं, यह सवाल भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि बदलाव। कहना न होगा कि सुप्रतिष्ठित समाजशास्त्री डॉ. श्यामाचरण दुबे की यह कृति इस सवाल पर विभिन्न पहलुओं से विचार करती है। डॉ. दुबे के अनुसार विकास का सवाल महज़ अर्थशास्त्रीय नहीं है, इसलिए 'सकल राष्ट्रीय उत्पाद और राष्ट्रीय आय की वृद्धि को विकास मान लेना भ्रामक है।' उनके लिए 'रोजगार विहीन विकास' का यूरोपीय ढाँचा आश्चर्य और चिन्ता का विषय है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में उदारीकरण और भूमंडलीकरण के दुष्परिणाम कई विकासशील देशों में सामने आ चुके हैं और भारत में उसके संकेत मिल रहे हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आर्थिक विकास को सही मायने में सामाजिक विकास से जोड़ा जाय। साथ ही मनुष्य के सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक आयामों को भी सामने रखा जाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो आधुनिक विकास को एक मानवीय आधार दिया जाना आवश्यक है, क्योंकि 'गरीबी और उससे जुड़ी समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील हुए बिना न तो जनतंत्र का कोई मतलब है, न ही विकास का। संक्षेप में, प्रो. दुबे की यह पुस्तक संसार के विभिन्न

समाजशास्त्रियों के अध्ययन-निष्कर्षो का विश्लेषण करते हुए सामाजिक विकास के प्रायः सभी पहलुओं पर गहराई से विचार करती है, ताकि उसे मनुष्यता के पक्ष में अधिकाधिक संतुलित बनाया जा सके।

58 गोदान/ प्रेमचंद, - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2021; 371p.

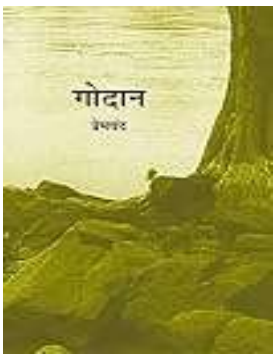

53454

गोदान प्रेमचंद का अंतिम और सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है, जो भारतीय ग्रामीण जीवन और किसानों की समस्याओं को चित्रित करता है। इसकी कहानी का केंद्र होरी महतो है, जो एक गरीब किसान है और जीवनभर गाय खरीदने का सपना देखता है। गाय भारतीय समाज में पवित्रता और संपन्नता का प्रतीक है, और होरी इसे पाकर सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करना चाहता है।होरी किसी तरह कर्ज लेकर गाय खरीदता है, लेकिन उसकी गाय मर जाती है, जिससे उसकी आर्थिक स्थिति और खराब हो जाती है। होरी का बेटा गोबर, अपने पिता की गरीबी और संघर्षों से असंतुष्ट होकर शहर चला जाता है। इधर, होरी और उसकी पत्नी धनिया कर्ज और सामाजिक दबावों से जूझते रहते हैं। गांव का शोषणकारी सामाजिक ढांचा, जमींदारों और महाजनों की क्रूर नीतियां, किसानों की दयनीय स्थिति को और बिगाड़ती हैं।कहानी का अंत होरी की मृत्यु से होता है, जब उसकी अंतिम इच्छा एक गाय दान करने की होती है, परंतु गरीबी के कारण वह इसे पूरा नहीं कर पाता। गोदान भारतीय समाज की आर्थिक असमानताओं, शोषण, और किसानों के जीवन संघर्षों की मार्मिक और यथार्थवादी तस्वीर पेश करता है।

59 प्रेमाश्रम/ प्रेमचंद, - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2018; 364p.

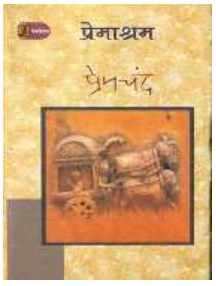

53455

प्रेमाश्रम बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में अत्याचारी जमीदारो, रिश्क्तखोर राजकर्मचारियों, अन्यायी महाजनों और संघर्षरत किसानों की कथा है। इस अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास में शोषणरहित और सुखी समाज के आदर्श की स्थापना की गई है। प्रेमचंद ने समाधान के रूप में प्रेमाश्रम की कल्पना की है, जिस पर आलोचकों में विवाद है। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेमचंद की भाषा की सजीवता और काव्यात्मकता इस उपन्यास में अपने श्रेष्ठतम रूप में प्रगट हुई है।

60 अपनी अपनी बीमारी/ परसाई, हरिशंकर - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 139p.

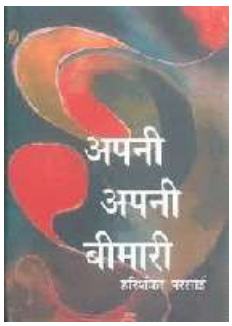

53456

हास्य और व्यंग्य की परिभाषा करना कठिन है। यह तय करना भी कठिन है कि कहाँ हास्य खत्म होता है और व्यंग्य शुरू होता है। व्यंग्य से हँसी भी आ सकती है, पर इससे वह हास्य नहीं हो जाता। मुख्य बात है कथित वस्तु का उद्देश्य और सरोकार क्या है । व्यंग्य का सामाजिक सरोकार होता है। इस सरोकार से व्यक्ति नहीं छूटता । श्रेष्ठ रचना चाहे वह किसी भी विधा में क्यों न हो, अनिवार्यतः और अन्ततः व्यंग्य ही होती है। इस अर्थ में हम व्यंग्य को चाहें तो तीव्रतम क्षमताशाली व्यंजनात्मकता के रूप में देख सकते हैं। व्यंग्य सहृदय में हलचल पैदा करता है। अपने प्रभाव में व्यंग्य करुण या कटु कुछ भी हो सकता है, मगर वह बेचैनी ज़रूर पैदा करेगा। पीड़ित, मजबूर, गरीब, शारीरिक विकृति का

शिकार, नारी, नौकर आदि को हास्य का विषय बनाना कुरुचिपूर्ण और क्रूर है । लेखक को यह विवेक होना चाहिए कि किस पर हँसना और किस पर रोना पीटनेवाले पर भी हँसना और पिटनेवाले पर भी हँसना विवेकहीन हास्य है। ऐसा लेखक संवेदना-शून्य होता है।

61 दो नाक वाले लोग/ परसाई, हरिशंकर - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2019; 192p.

53457

मैं उन्हें समझा रहा था कि लड़की की शादी में टीमटाम में व्यर्थ खर्च मत करो। पर वे बुजुर्ग कह रहे थे- आप ठीक कहते हैं, मगर रिश्तेदारों में नाक कट जायेगी। नाक उनकी काफी लम्बी थी। मेरा ख्याल है, नाक की हिफाजत सबसे ज्यादा इसी देश में होती है। और या तो नाक बहुत नर्म होती है या छुरा तेज़ जिससे छोटी-सी बात से भी नाक कट जाती है। छोटे आदमी की नाक बहुत नाजुक होती है। यह छोटा आदमी नाक को छिपाकर क्यों नहीं रखता? कुछ बड़े आदमी, जिनकी हैसियत है, इस्पात की नाक लगवा लेते हैं और चमड़े का रंग चढ़वा लेते हैं। कालाबाज़ार में जेल हो आये हैं। औरत खु आम दूसरे के साथ बॉक्स' में सिनेमा देखती है । लड़की का सार्वजनिक गर्भपात हो चुका है। लोग उस्तरा लिये नाक काटने को घूम रहे हैं। मगर काटें कैसे? नाक तो स्टील की है। चेहरे पर पहले जैसी ही फिट है और शोभा बढ़ा रही है। स्मगलिंग में पकड़े गये हैं। हथकड़ी पड़ी है। बाज़ार में से ले जाये जा रहे हैं। लोग नाक काटने को उत्सुक हैं। पर वे नाक को तिजोरी में रखकर स्मगलिंग करने गये थे। पुलिस को खिला-पिला कर बरी होकर लौटेंगे और नाक फिर पहन लेंगे।

62 समय और संस्कृति/ दुबे, श्यामाचरण - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2017; 188p.

53458

परंपरा की अनिवार्य महता और उसके राजनीतिकरण से होनेवाले विनाश की पहचान कर ही हम वास्तविक भारतीयता को जान सकते हैं। इसके लिए समस्त समाजिक औध से युक्त इतिहास-दृष्टि की जरूरत है- क्योंकि अतद्वंद और विरोधाभास हिंदू अस्मिता के सबसे बड़े शत्रु हैं। दूसरी तरफ समाज के चारित्रिक हास के कारक रूप में संक्रमणशील समाज के सम्मुख परिवर्तन की उद्म आधुनिकता धर्म के दुरुपयोग के घातक खतरे मौजूद हैं। पश्चिम के दायित्वहीन भोगवादी मनुष्य की नकल करने वाले समाज में संचार के माध्यमों की भूमिका सांस्कृतिक विकास में सहायक न रहकर नकारात्मक हो गई है। ऐसे में बुद्धिजीवी वर्ग की समकालीन भूमिका और भी जरूरी मुश्किल हो गई है। परंपरा सामाजिक ऊजा का एक सशक्त स्रोत है। यह कहते हुए प्रो. श्यामाचरण दुबे यह गंभीर चेतावानी देते हैं कि वैश्वीकरण के नाम पर एक भोगवादी संस्कृति में लोक संस्कृति और लोककला का भी अहम् हिस्सा है। उसके वर्तमान और भविष्य की चिंता के साथ-साथ संस्कृति और सत्ता के संबंध जिस वैज्ञानिक दृष्टि से समय और संस्कृति में करने. की कोशिश की गई है उससे समकालीन सामाजिक सांस्कृतिक समस्याओं का संतुलित मूल्यांकन संभव हुआ है। श्यामाचरण दुबे का समाज-चिंतन इस अर्थ मैं विशिष्ट है कि यह कोरे सिद्धांतों की पड़ताल और जड़ हो चुके अकादमिक निष्कपों के पिष्ट-प्रेषण में व्यय नहीं होता। इसीलिए उनका चिंतन उन तव्या को पहचानने की समझ देता है जिन्हें जीवन जीने के क्रम में महसूस किया जाता है लेकिन उन्हें शब्द देने का काम अपेक्षाकृत जटिल होता है।

63 हमारे और अंधेरे के बीच: चार पोलिश कवि/ रेनाता चेकाल्स्का (अनु.) - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2011; 320p.

53459

इससे कौन इनकार कर सकता है कि मनुष्य हर समय अँधेरे और उजाले के बीच अपनी जगह की तलाश में भटकता रहता है। बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध दूसरे महायुद्ध के भीषण नरसंहार के बाद भी बहुत सारी तानाशाहियों और अत्याचारों की गिरफ्त में रहा । संसार भर की कविता ने युद्ध के बाद की राहत के ठण्डे उजाले में बढ़ते हुए अँधेरे को पहचानने की कोशिश की। इस कोशिश में आधुनिक पोलिश कविता ने दो तानाशाहियों और मनुष्य द्वारा मनुष्य पर की जा रही क्रूरताओं और मानवीय अपमान और विडम्बना और इतिहास के विद्रूपों का प्रतिरोध करने और उनके लिए मार्मिक रूपक गढ़ने का दुस्साहस किया। उसकी अजेय कल्पनाशीलता, अदम्य जिजीविषा और भाषा को सर्वथा अप्रत्याशित इलाक़ों में ले जाने की रचनात्मक क्षमता ने जो कविता रची वह विलक्षण, अप्रतिम और अत्यन्त मार्मिक है। उसमें संवेदना की गहराई और वैचारिक सघनता के बीच कोई फाँक नहीं है। पोलिश विदुषी रेनाता चेकाल्स्का के साथ मिलकर ऐसे चार महाकवियों के हिन्दी अनुवाद अब एकत्र प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता है। संयोगवश 2011 चेस्लाव मीलोष की जन्मशती का वर्ष भी है।

64 प्राणों में घुले हुए रंग/ रेणु, फणीश्वरनाथ - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2018; 232p.

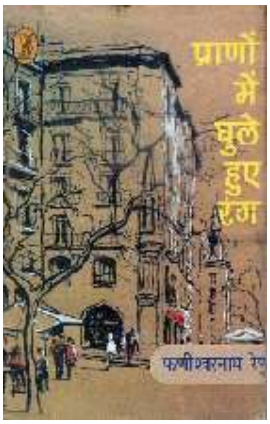

53460

इस संग्रह में रेणु की इतनी विधाओं में लिखी गयी रचनाओं को एक साथ प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि इस संग्रह के द्वारा पाठकों को रेणु की 'बहुमुखी प्रतिभा' से परिचय एवं उनकी अप्रकाशित असंकलित यानी अप्राप्य रचनाओं से पाठकों का साक्षात्कार एक ही साथ हो। कहानी, रिपोर्ताज़, नाटक, संस्मरण, निबन्ध, पत्र और पटकथा - ये सात विधाएँ सात रंग की तरह हैं, जो एक-दूसरे से अलग होते हुए भी अभिन्न हैं । इन सभी के द्वारा रेणु के प्राणों में घुले हुए सभी रंग एवं भाव प्रकट हुए हैं। कुछ रंग उदास, मटमैले हैं, तो कुछ चटक, कुछ पीले तो कुछ टहटह लाल, कहीं-कहीं सफेद रंग दूर तक फैला दिखाई देता है, तो कभी अँधेरे की तरह काला रंग मन में घर करने लगता है। ...रेणु की ये रचनाएँ जीवन के एक-एक भाव को, एक-एक रंग को ...यानी कि जीवन को समग्रता के साथ देखती, परखती और प्रस्तुत करती हैं। रेणु के लिए कोई भी रंग ख़राब नहीं है, वे एक ऐसे बड़े चित्रकार हैं, जो हर रंग से अपने भावात्मक तादात्म्य को स्थापित करता है

65 लम्बी कहानी और समकालीन परिदृश्य/ अग्रवाल, राशि - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2021; 216p.

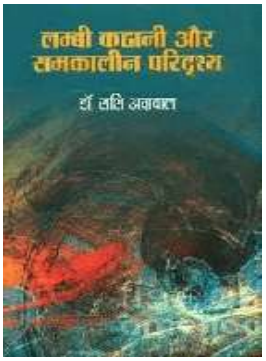

53461

लम्बी कहानी और समकालीन परिदृश्य पर केन्द्रित यह अध्ययन लम्बी कहानी और समकालीन समय का बिंब प्रतिबिंबात्मक पचिय - है। सन् 1980 के बाद का समय लंबी कहानी की पहचान और प्रतिष्ठा का समय है। दुर्दम्य जिजीविषा से प्रेरित रचनाधर्मिता ने लम्बी कहानी के रूप में एक ही लहर में सब कुछ बहा लेने का हौसला दिखाकर कथा जगत् में नए युग का सूत्रपात किया। यह ऐसा दौर था जब भूमंडलीकरण, सूचना - क्रान्ति,

बाज़ारबाद के तूफानी आवेग आम और विशिष्ट को भौचक्का कर रहे थे और रचनाकार की मेधा को उद्वेलित- आलोडित। इस ऊहापोह ग्रस्त मानसिकता में क्या चुनें? कैसे चुनें? और क्यों चुने? के प्रश्न क्या छोड़े? और कैसे छोड़े की दुविधा में बदल गए। समाधान में साहित्य विधाता की कलम वामनरूपी विस्तार लेकर सब कुछ को एक ही वितान में समोने में जुट गयी। समकालीन जीवन की आर्थिक विसंगतियाँ, बाज़ारवाद, गरीबी, बेरोजगारी, महानगरीय जीवन की ऊब, कुंठा, संत्रास, टूटते विखरते रिश्ते, अकेलापन, सूचना- क्रान्ति का मयावी रूप और विस्तार, कुत्सित राजनीतिक ध्रुवीकरण, सांप्रदायिकता जैसे कितने ही पक्ष उसमें एक साथ चित्रित होने लगे। प्रस्तुत पुस्तक कहानी की इस अभिनव उड़ान पर तीसरी नज़र डालने का आरंभिक प्रयास है।

लेखक सूची

लेखक/ संपादक/अनुवादक	क्रमांक
अग्रवाल, पुरुषोत्तम	49
अग्रवाल, राशि	65
उपाध्याय, कृष्णदेव	7
उपाध्याय, रामजी	6
एलविन, वेरियर	32, 33, 34, 35, 36
कुलेट, फिलिप	55
ग्रिग्सन, डब्ल्यू. वी.	39
जोधका, सुरिंदर एस (सम्पादक)	52, 53, 54
जोशी, रामशरण	40
डालमिया, वसुधा	27
तिवारी, शिवकुमार	38
दुबे, श्यामाचरण	56, 57, 62
देवपुरा, प्रतापमल	2
द्विवेदी, शरद	4
द्विवेदी, हजारीप्रसाद	3
नरवणे, विश्वनाथ एस.	51
नारायण, बद्री	8, 9
परसाई, हरिशंकर	60, 61
पाण्डे, गोविन्द चन्द्र	5
पाण्डे, मृणाल	23, 24
पाण्डेय, कनिष्क	48
पुनियनी, राम (संपादक)	29
प्रेमचंद,	58, 59

फोरसिथ, कैप्टन जे. 37
भट्टाचार्य, सुखमय 13
भंडारी, मन्नू 19
मलयज, 50
मिश्र, गोविन्द 22
मुखर्जी, राधामुकुद 44
मुले, गुणाकर 1
मूलर, मैक्स 28
यादव, राजेन्द्र 16, 17, 18, 30
रघुवंश 15
रज़ा, जाफ़र 10
रणजीत, 14
रेणु, फणीश्वरनाथ 64
रेनाता चेकाल्स्का (अनु.) 63
शर्मा, रामविलास 26
शर्मा, रामशरण 47
शर्मा, सुरेश 25
शिवानी 20, 21
श्रीनिवास, एम. एन. 41, 42, 43
सांकृत्यायन, राहुल 11, 12
सेन, इलीना (संपादक) 31
हबीब, इरफान 45, 46

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका	क्रमांक
20वीं सदी -- सामाजिक परिस्थितियाँ	22
अगरिया (इंडिक लोग)	36
आत्महत्या	34
आधुनिकता	25
आर्थिक असमानता	33, 18
आर्थिक इतिहास	16
आर्थिक विकास	57
आर्थिक विषमताएँ	65
इंडिक फिक्शन	58
इतिहास और आलोचना	3, 50
इतिहास और संस्कृति	8
इस्लामी संस्कृति	10
उत्तर-वैदिक काल	44
उर्दू गल्प	58
एकाधिक व्यक्तित्व	17
ओलंपिक खेल	48
औपनिवेशिक प्रभाव	23
करंजा-- भारत	35
कुमाऊँ-गढ़वाल क्षेत्र	24
कृषि पद्धतियां	2
खेल -- इतिहास	48
गैर-सरकारी	39
गोंड (इंडिक लोग)	35

गोंडवाना 38
ग्राम समुदायों 56
ग्रामीण क्षेत्र 52
ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरणीय स्थिरता 2
ग्रामीण विकास 2, 53
ग्रामीण समाजशास्त्र 54
ग्रामीण समुदाय 42
घर-परिवार 19
चित्रकार 64
जनजातीय समाज 39
जाति व्यवस्था 41, 43, 47
जीवन-प्रणाली 28
ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति 4
दार्शनिक दृष्टिकोण 15. 51
धर्म और राजनीति 29
धर्म-विश्वासों 10
धार्मिक आस्थाओं 33
धार्मिक संस्थाएँ और राजनीति 31
धार्मिक सहिष्णुता 14
नर्मदा घाटी 37
नवपाषाण काल 46
नारीवाद और धर्म 31
पद्मावती, चित्तौड़ की रानी 49
परंपरा और आधुनिकता| 62
पशु-चिकित्सा 39

पश्चिमी दर्शन 26
पारंपरिक रीति-रिवाजों 9
पारिवारिक सागा 22
पाश्चात्य सभ्यता 15
पाषाण युग 46
पोलिश कविता 63
पौराणिक कथाओं 32
प्रशासक 28
प्राचीन भारतीय सभ्यता 44
प्रेमचन्द 51
बस्तर (जिला) 34
बहुमुखी प्रतिभा 64
बीसवीं शताब्दी 59
बौद्धिक सम्पदा अधिकार 55
भारत 16, 22, 27, 29, 30, 34, 40, 42, 43, 46, 48, 52
भारतीय कथा 20
भारतीय गाँव -- सामाजिक आर्थिक पहलू 54
भारतीय चिन्तन 13
भारतीय संगीत 23
भारतीय सभ्यता 5
भूमंडलीकरण 57
भूमंडलीय कानूनी 55
मध्य प्रांत-- भारत 35
मध्यभारत 37
मनोवैज्ञानिक 17,42

महिलाओं के अधिकार 30
मानव जाति 1
मानव-वैज्ञानिक 56
मानसिक स्वास्थ्य 20
मार्क्स, कार्ल, 1818-1883 11, 26
मोहनजोदड़ो स्थल -- पाकिस्तान 45
युवावस्था 33
राज कर्मचारी 59
राज गोंड (इंडिक लोग) 38
राजनीतिक हिंसा 29
राजपूत 49
राजा और शासक 38
राष्ट्रमण्डल 6
राष्ट्रवाद 8, 27
रोजगार 53
लिंग पहचान 4
लोक मान्यताएं और प्रथाएं 7
लोक संस्कृति 7, 8, 2009
लोक साहित्य 7
वन्य प्राणी 1
विज्ञान और नैतिकता 11
विधि-निषेधों 12
वैदिक दर्शन 5
वैश्वीकरण और संस्कृति 62
व्यक्तित्व 51

व्यंग्य की सामाजिक भूमिका 60
शिक्षा-दीक्षा 12
शिल्प कला 6
शिष्टाचार और रीति-रिवाज 58
शुक्ल, रामचंद्र, 1884-1941 50
शूद्र 47
शोषणरहित 59
संगीत और समाज 23
सभ्यता 1
सभ्यता, प्राचीन 25
समाज व्यवस्था 13
संस्कृत नाटक 3
संस्कृति 28
संस्कृति और सभ्यता 62
सांप्रदायिकता 14
सामाजिक असमानता 41
सामाजिक आलोचना 60
सामाजिक निर्माण 31
सामाजिक परिवर्तन -- ग्रामीण क्षेत्र -- भारत 54
सामाजिक परिस्थितियाँ 30, 40
सामाजिक मुद्दे 65
सामाजिक वर्ग -- भारत 41
सामाजिक विकास 57
सामाजिक विरोधाभास 26
सामाजिक व्यंग्य 61

सामाजिक संघर्ष 14, 18
सामाजिक संरचना 52
सामाजिक स्थिति 16, 18
सामाजिक स्थिति-- प्राचीन काल 47
सामाजिक-सांस्कृतिक 43
सामुदायिक विकास कार्यक्रम 53
सांस्कृतिक दृष्टिकोण-- ट्रांसजेंडर 4
सांस्कृतिक नृविज्ञान 15
सांस्कृतिक मानदंड 61
सांस्कृतिक मानवविज्ञान 25
सांस्कृतिक विरासत 9
साहित्य 20, 24
सिंधु घाटी सभ्यता 44, 45
स्वतंत्रता 56
स्वतंत्रता आंदोलन 24
स्वदेशी लोग 40
हड़प्पा -- भारत 45
हास्य और व्यंग्य 60
हिंदी कथा साहित्य 65, 21
हिंदी साहित्य 50, 61
हिंदू सभ्यता 27
हिन्दू धर्म 5
हिन्दू पुराण 32
हिमालय पर्वत श्रृंखला 37
हेगेल, जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक, 1770-1831 11